ई-पत्रिका
₹ 49/-

▶ वैश्विक कूटनीति का 'उत्तरायण'

▶ शांति की मृगमरीचिका

CULT CURRENT

वर्ष: 9 अंक: 1 जनवरी-फरवरी (संयुक्तांक), 2026 WE MAKE VIEWS

नव उपनिवेशवाद 2.0

डावोस के तनाव, ग्रीनलैंड पर संघर्ष और ट्रंप की नीतियों ने 'नव-उपनिवेशवाद 2.0' को जन्म दिया है। इस अराजक विश्व व्यवस्था में भारत एक सशक्त विकल्प और नई उम्मीद बनकर उभरा है।

Let's 360°

- Media Consultancy
- Web solution
- Advertising
- Publication
- Languages Services
- Survey & Research
- Branding
- AV Production
- Campaign management
- Event organizer
- PR partner, PR associate
- Content writer & provider
- Media analyst

URJAS MEDIA VENTUE IS PERHAPS THE ONLY CONSULTING FIRM THAT CAN GIVE YOUR ORGANISATION A 360 DEGREE MEDIA BUSINESS GROWTH CONSULTING THROUGH IT'S 360 CAPABILITIES. FOR US, CONSULTING DOES NOT ONLY MEAN MECHANICAL COST REDUCTION THROUGH BETTER IT APPLICATIONS, WE FIND OUT WHAT YOUR ORGANISATION REALY NEEDS AND GIVE YOU AN INTELLECTUAL SOLUTION THAT HELP YOU REDUCE COST AS WELL AS HELPS YOURS BUSINESS GROW AND BEAT THE COMPETITION.

NOW!! OUR CONSULTANT WILL GET BACK TO YOU IN 24 HOURS AND PUT YOU IN TO THE HIGH GROWTH PATH

URJAS MEDIA
VENTURE

BEAT THE COMPETITION

www.urjasmedia.com

SMS 'BUSINESS GROWTH'
TO +91-8826-24-5305 OR
E-MAIL info@urjasmedia.com

गुमनाम नायिका

गांव की गलियों से राष्ट्र की शान तक

अक्षिता धनखड़

फ्लाइट लेफ्टिनेंट अक्षिता धनखड़ की कहानी एक छोटे से हरियाणा के कसनी गांव से शुरू होती है, जहाँ उन्होंने बचपन में अपने पिता को गणतंत्र दिवस परेड में हिस्सा लेते देखा था। अपने पिता की वर्दी और अनुशासन ने उनके मन में सेवा भाव और देशभक्ति की भावना को जगाया। उस एक नज़र ने उनके भीतर एक सपना पैदा किया — भारतीय वायु सेना में उड़ान भरने और एक दिन राष्ट्रीय ध्वज को गर्व से फहराने का। अक्षिता ने कॉलेज में पढ़ाई के साथ एनसीसी जॉइन किया, जहां उन्हें नेतृत्व, अनुशासन और सेवा के गुण सीखने को मिले। यह अनुभव आगे उनके एयर फोर्स कॉमन एडमिशन टेस्ट की तैयारी में उनकी सबसे बड़ी ताकत बना। चुनौतियों से भरी इस प्रक्रिया में उन्होंने न केवल परीक्षा पास की बल्कि फ्लाइंग ऑफिसर के रूप में कमीशन भी हासिल किया और बाद में फ्लाइट लेफ्टिनेंट के पद तक पहुंच गईं। बीते 26 जनवरी 2026 को 77वें गणतंत्र दिवस परेड में, अक्षिता राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू के साथ कर्तव्य पथ पर तिरंगा फहराने का गौरव हासिल किया हैं — यह उनके और उनके परिवार दोनों के लिए गर्व का क्षण है। उनकी यात्रा यह दर्शाती है कि कैसे छोटे गांव के सपने भी समर्पण, दृढ़ निश्चय और कठिन परिश्रम से वास्तविकता बन सकते हैं।

संपादकीय

राष्ट्रीय संपादक
संजय श्रीवास्तव

संपादक
श्रीराजेश

प्रबंध संपादक
सच्चिदानंद पाण्डेय

रोमिंग संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

राजनीतिक संपादक
अंशुमान त्रिपाठी

मेट्रो संपादक
शक्ति प्रकाश श्रीवास्तव
डॉ. रुद्र नारायण

अंतर्राष्ट्रीय संपादक
श्रीश पाठक

कारपोरेट संपादक
गगन बत्रा

समन्वय संपादक
सतीश चंद्र

डिजीटल संपादक
जलज श्रीवास्तव

सहायक संपादक
संदीप कुमार

उप संपादक
मनोज कुमार
संतु दास

साहित्य संपादक
अनवर हुसैन

कला संपादक
जया वर्मा

वेब एवं आईटी विशेषज्ञ
अनुज कुमार सिंह

फोटो संपादक
विवेक पाण्डेय

विशेष संवाददाता
कमलेश झा
विकास गुप्ता

संवाददाता
संदीप सिंह
अनिरुद्ध यादव

ब्यूरो प्रमुख (अंतर्राष्ट्रीय)
अकुल बत्रा (अमेरिका)
सी.शिवरतन (नीदरलैंड)
जी. वर्मा(लंदन)
डॉ. मो. फहीम अकबर (पाकिस्तान)
ए. असगरजादेह (ईरान)
डॉ. निक सेरी (मलेशिया)

ब्यूरो प्रमुख (राष्ट्रीय)
राकेश नरवाल (नई दिल्ली)
संजय कुमार सिंह (लखनऊ)
कैप्टन सुधीर सिन्हा (रांची)
निमेष शुक्ल (पटना)
नागेन्द्र सिंह (कोलकाता)
राकेश रंजन (गुवाहाटी)

विपणन
सत्यजीत चौधरी
महाप्रबंधक

ऑनलाइन प्रसार
सृजीत डे

वर्षः 9 अंकः 1 जनवरी-फरवरी, 2026

Follow us:
fb.com/cultcurrent @Cult_Current cultcurrent@gmail.com

URJAS MEDIA VENTURE
Head office: Swastik Apartment, GF, Pirtala, Agarpara, Kolkata 700 109, INDIA, Tel: +91 6289-26-2363
Corporate Office: 14601, Belaire Blvd, Houston, Texas 77083 USA Tel: +1 (832) 670-9074
Web: http://cultcurrent.in

Cult Current is a monthly e-magazine published by Urjas Media Ventures from Swastik Apartment, GF, Pirtala, Agarpara, Kolkata 700 109.
Editor: Srirajesh

Disclaimer: All editorial and non-editorial positions in the e-magazine are honorary. The publisher and editorial board are not obligated to agree with all the views expressed in the articles featured in this e-magazine. Cult Current upholds a commitment to supporting all religions, human rights, nationalist ideology, democracy, and moral values.

COVER STORY 30

ट्रंप का अमेरिका: सुपर पावर से सुपर रिस्क 39

कूटनीतिक अलार्म: भारत का इम्तिहान 42

12 वैश्विक कूटनीति का 'उत्तरायण'
मदर ऑफ ऑल डील

'कमल' का 22 'नवीन' अध्याय

18 केंद्रीय बजट 2026-27
उजला भविष्य, धुंधला वर्तमान

वंशवाद का अवसान एवं भगवा 'सूर्योदय' 26

चीनी मुद्रा का टूटता भ्रम 46

बोर्ड ऑफ पीस: शांति की मृगमारीचिका 50

ब्रिक्स 2026: भारत की अग्निपरीक्षा 54

वृहत्तर यूरेशिया: त्रिध्रुवीय भविष्य... 58

संयम के बीच सैन्य दांव 62

ईरान: रूह पर फिर लिखी जा रही.... 66

सीमा पर साजिश 70

डिजिटल कुरुक्षेत्र में भारत 74

76 सारा अली खान-शुभमन गिल की 'सिक्रेट डेट'

Small talk

नोरा का गॉसिप-डांस

बॉलीवुड की नोरा फतेही हमेशा अपने डांस और ग्लैमरस लुक्स की वजह से सुर्खियों में रहती हैं। लेकिन हाल ही में उनका नया ड्रेसिंग स्टाइल और फिल्म प्रमोशन के दौरान किए गए फनी मूव्स इंटरनेट पर वायरल हो गए। फैंस उनके हर फ्लॉन्ट, पोज़ और एक्सप्रेशन पर कमेंट कर रहे हैं, और सोशल मीडिया पर 'नोरा की स्टाइल, नोरा का फ्लेयर' जैसे मीम्स की झड़ी लग गई। कहा जा रहा है कि उनके अगले गाने में यह वायरल स्टाइल और कॉमिक मूव्स भी दिख सकते हैं। रिपोर्ट्स के मुताबिक, प्रमोशन के दौरान नोरा ने अचानक मंच पर छोटे-छोटे फनी स्टेप्स डाले, जिससे वहां मौजूद सभी कैमरे और फैंस उनके मूव्स को क्लिक करने पर मजबूर हो गए। नोरा ने हँसते हुए कहा, 'मुझे तो बस मस्ती करनी है, बाकी तो फैंस देखेंगे और मज़े करेंगे।' ●

2026 में तहलका मचाने वाली खोजें

क्रांतिकारी तकनीक पेश

वैज्ञानिकों ने 'PropMolFlow' नामक एक क्रांतिकारी तकनीक पेश की है, जो वांछित गुणों के आधार पर अणुओं को उल्टे क्रम में डिजाइन करने की अनुमति देती है। पारंपरिक चरण-दर-चरण निर्माण के बजाय, अब सीधे उन आणविक संरचनाओं की पहचान की जा सकती है जो विशिष्ट लक्ष्यों को पूरा करती हैं। यह सफलता नई दवाओं और उन्नत सामग्रियों के निर्माण में भारी तेजी लाएगी। इससे फार्मास्युटिकल नवाचार और तकनीकी विकास के लिए त्वरित समाधान खोजने में मदद मिलेगी। ●

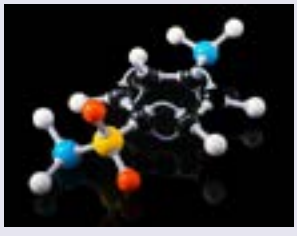

अर्थराइटिस के लिए नई उम्मीद!

स्टैनफोर्ड मेडिसिन के शोधकर्ताओं ने एक ऐसी तकनीक विकसित की है जो न केवल अर्थराइटिस के लक्षणों से राहत देती है, बल्कि कार्टिलेज को फिर से उगाने और अर्थराइटिस के बढ़ने की गति को धीमा करने में भी सक्षम है। यह नवाचार ऊतक मरम्मत पर केंद्रित है, जिससे जोड़ों के क्षरण से जूझ रहे करोड़ों लोगों को लाभ मिल सकता है। जड़ पर प्रहार करने वाली यह विधि ऑर्थोपेडिक चिकित्सा की तस्वीर बदल सकती है। ●

2026 में वाणिज्यिक अंतरिक्ष स्टेशनों का उदय

अंतरिक्ष अन्वेषण में एक बड़ा मील का पत्थर तब स्थापित होगा जब Vast का Haven-1, जो दुनिया का पहला निजी तौर पर निर्मित स्वतंत्र अंतरिक्ष स्टेशन है, 2026 में लॉन्च होगा। इसे SpaceX के Falcon 9 रॉकेट के जरिए कक्षा में भेजा जाएगा। Haven-1 को विशेष रूप से कम अवधि के मानवयुक्त मिशनों और वाणिज्यिक अनुसंधान के लिए डिज़ाइन किया गया है। यह निजी तौर पर संचालित परिक्रमा प्रयोगशालाओं के एक नए युग की शुरुआत कर सकता है, जो ISS जैसे पुराने प्लेटफार्मों के पूरक के रूप में कार्य करेगा। ●

रिंग नेबुला के भीतर मिली विशाल लोहे की संरचना

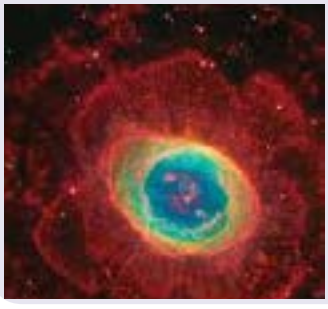

खगोलविदों ने पृथ्वी से लगभग 2,000 प्रकाश-वर्ष दूर स्थित प्रसिद्ध रिंग नेबुला (M57) के भीतर आयनित लोहे के परमाणुओं की एक आश्चर्यजनक विशाल छड़ का पता लगाया है। विलियम हर्शल टेलीस्कोप के उन्नत उपकरणों का उपयोग करते हुए, इस खोज ने एक ऐसी संरचना का खुलासा किया है जो पृथ्वी और प्लूटो के बीच की दूरी से लगभग 1,000 गुना अधिक लंबी है। विशेष बात यह है कि इस संरचना में मौजूद लोहे का द्रव्यमान मंगल ग्रह के बराबर है। यह खोज इस समझ को पूरी तरह बदल सकती है कि मरते हुए सितारों के चारों ओर 'प्लैनेटरी नेबुला' का निर्माण और विकास कैसे होता है। ●

2026 में रेनॉल्ट डस्टर की धमाकेदार वापसी

रेनॉल्ट अपनी नई 2026 डस्टर के साथ ऑटोमोबाइल बाजार में एक बड़ी हलचल पैदा करने के लिए तैयार है। भारत के गणतंत्र दिवस समारोह के साथ तालमेल बिठाते हुए, इसे 26 जनवरी 2026 को पेश किया जाएगा। यह अगली पीढ़ी की SUV आधुनिक डिज़ाइन, उन्नत फीचर्स और मजबूत क्षमताओं के साथ लौट रही है। इसका लक्ष्य कॉम्पैक्ट SUV सेगमेंट में अपनी पुरानी पहचान और 'आइकॉनिक' दर्जे को पुनर्जीवित करना है। इस आधिकारिक लॉन्च से पहले खरीदारों के बीच इसकी कीमत और परफॉर्मेंस विवरण को लेकर काफी उत्साह है। ●

नियुक्ति-इस्तीफा

ए. के. बालसुब्रमण्यन, अध्यक्ष, परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद

विशिष्ट वैज्ञानिक ए. के. बालसुब्रमण्यन को जनवरी 2026 में परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद (AERB) का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उन्होंने भारत के विस्तार लेते परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के लिए परमाणु सुरक्षा निरीक्षण की जिम्मेदारी संभाली है।

अभिषेक तिवारी , वरिष्ठ आईपीएस अधिकारी (मध्य प्रदेश कैडर)

प्रतिष्ठित आईपीएस अधिकारी अभिषेक तिवारी ने जनवरी 2026 में भारतीय पुलिस सेवा से इस्तीफा दे दिया। उन्होंने NTRO (राष्ट्रीय तकनीकी अनुसंधान संगठन) में प्रतिनियुक्ति के दौरान स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की मांग की। राष्ट्रपति के पुलिस वीरता पदक से सम्मानित श्री तिवारी का इस्तीफा भारत के प्रशासनिक और सुरक्षा गलियारों के भीतर एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय विकास के रूप में देखा गया।

उन्होंने कहा

डोनाल्ड ट्रंप
राष्ट्रपति, अमेरिका

"अगर हमारे सहयोगी अपनी जिम्मेदारियां नहीं निभाते, तो अमेरिका भी उन्हें सुरक्षा की गारंटी नहीं देगा।"

इमैनुएल मैक्रों
राष्ट्रपति, फ्रांस

"यूरोप किसी भी दबाव या धौंस से डरने वाला नहीं है — हम उदंडों से नहीं, सम्मानितों से बात करना पसंद करते हैं।"

श्रद्धांजलि

सरोजिनी नायडू
(13/02/1879-02/03/1949)

सरोजिनी नायडू भारत की स्वतंत्रता संग्राम की प्रमुख महिला नेता थीं, जिन्हें उनकी काव्य प्रतिभा के कारण 'भारत की नाइटिंगेल' कहा जाता है। उनका जन्म 13 फरवरी 1879 को हैदराबाद में हुआ था। उनके पिता अघोरनाथ चट्टोपाध्याय एक विद्वान और वैज्ञानिक थे, जबकि उनकी माँ एक कवयित्री थीं। बचपन से ही वे मेधावी छात्रा थीं और कम उम्र में ही अंग्रेज़ी कविता लिखने लगी थीं। उनकी उच्च शिक्षा इंग्लैंड के किंग्स कॉलेज और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हुई।

सरोजिनी नायडू का योगदान केवल साहित्य तक सीमित नहीं था; वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी सक्रिय रूप से शामिल हुईं। वे महात्मा गांधी, गोपाल कृष्ण गोखले और बाल गंगाधर तिलक से प्रेरित होकर स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़ीं। 1916 में वे महिलाओं की समानता और शिक्षा के लिए आंदोलन में शामिल हुईं। 1919 में जलियांवाला बाग हत्याकांड के बाद उन्होंने ब्रिटिश शासन की कड़ी आलोचना की। उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया और कई बार जेल भी गईं।

1925 में, वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष बनीं, जो उस समय महिलाओं के लिए एक बड़ी उपलब्धि थी। वे अपने प्रभावशाली भाषणों और तेजस्वी नेतृत्व के लिए जानी जाती थीं। 1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद, उन्हें उत्तर प्रदेश का प्रथम राज्यपाल नियुक्त किया गया, जिससे वे भारत की पहली महिला राज्यपाल बनीं। वे आज़ादी के बाद भी राष्ट्रीय एकता, महिला सशक्तिकरण और सामाजिक सुधारों के लिए कार्यरत रहीं।

2 मार्च 1949 को लखनऊ में उनका निधन हो गया। उनकी कविताएँ और देशभक्ति की भावना आज भी लोगों को प्रेरित करती हैं। वे न केवल एक कुशल कवयित्री थीं, बल्कि एक महान स्वतंत्रता सेनानी और सशक्त नेता भी थीं, जिन्होंने भारत में महिलाओं की भूमिका को नई पहचान दी। उनकी कविताओं में भारतीय संस्कृति, प्रकृति प्रेम और राष्ट्रीयता की झलक मिलती है। उनके योगदान को भारत हमेशा याद रखेगा। ●

नेतन्याहू का बाइडन पर हथियार पाबंदी का आरोप

इजरायली प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू ने गाजा युद्ध के दौरान इजरायली सैनिकों की मौत के लिए पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जो बाइडन के कार्यकाल में हथियारों पर लगी आंशिक 'पाबंदी' (एंबारगो) को जिम्मेदार ठहराया है। एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में नेतन्याहू ने कहा कि अक्टूबर 2023 में युद्ध शुरू होने के बाद इजरायल को इसकी 'भारी कीमत' चुकानी पड़ी, क्योंकि एक महत्वपूर्ण चरण में सेना के पास पर्याप्त गोला-बारूद की कमी थी। उन्होंने बाइडन का नाम लिए बिना संकेत दिया कि अमेरिकी प्रतिबंधों के कारण प्रमुख हथियार उपलब्ध नहीं थे, जिससे कई सैनिक मारे गए। नेतन्याहू ने कहा कि इस घटना ने रणनीतिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए इजरायल के घरेलू रक्षा उद्योग के विस्तार के उनके संकल्प को और मजबूत किया है। वहीं, बाइडन के पूर्व सलाहकार अमोस होचस्टीन ने इस दावे को खारिज करते हुए इसे असत्य और 'अहसानफरामोशी' करार दिया। ●

डेमोक्रेट्स ने क्रिस्टी नोएम को हटाने की मांग की

अमेरिका प्रतिनिधि सभा के शीर्ष डेमोक्रेट्स ने राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप से मांग की है कि वे होमलैंड सिक्योरिटी सचिव क्रिस्टी नोएम को बर्खास्त करें, अन्यथा वे महाभियोग की कार्यवाही का सामना करने के लिए तैयार रहें। यह मांग मिनियापोलिस में एक हाई-प्रोफाइल आव्रजन प्रवर्तन अभियान के दौरान संघीय एजेंटों द्वारा एक व्यक्ति की गोली मारकर हत्या करने के बाद उठी है। हाउस माइनॉरिटी लीडर हकीम जेफरीज और अन्य नेताओं ने विभाग की कार्रवाई की कड़ी आलोचना करते हुए चेतावनी दी कि यह हिंसा 'तुरंत समाप्त होनी चाहिए।' ●

येन पर कार्रवाई के लिए इंतजार कर रहा है जापान

जापान के एक पूर्व केंद्रीय बैंक अधिकारी अत्सुशी ताकेउची के अनुसार, जापान येन के बाजार में सीधे हस्तक्षेप करने में देरी कर सकता है। अमेरिका के साथ समन्वित संकेतों ने पहले ही मुद्रा की तेज गिरावट को रोकने में मदद की है। न्यूयॉर्क फेडरल रिजर्व द्वारा दरों की जांच ने अमेरिकी समर्थन का संकेत दिया है, जिससे येन पर सट्टेबाजी के हमलों पर रोक लगी है। येन फिलहाल प्रति डॉलर 160 के करीब से वापस संभल रहा है, ऐसे में टोक्यो आगामी चुनावों से पहले शेयर बाजार को नुकसान से बचाने के लिए हस्तक्षेप से बच सकता है। ●

ब्रिटेन में 'फर्जी वीजा नौकरियों' का पर्दाफाश

ब्रिटेन में चल रहे फर्जी 'स्किल्ड वर्कर वीजा' प्रायोजन के काले बाजार का 'द टाइम्स' की एक अंडरकवर जांच ने भंडाफोड़ किया है। यह रैकेट केवल कागजों पर नौकरियां बनाकर वीजा प्रणाली का दुरुपयोग करता है। इसमें प्रवासियों को फर्जी प्रायोजन दस्तावेज, सैलरी स्लिप और टैक्स रिकॉर्ड दिए जाते हैं, जबकि वे वास्तव में कोई काम नहीं करते। वीजा मिलने के बाद, इन प्रवासियों को नकद मजदूरी वाली नौकरियों में धकेल दिया जाता है और उनसे फर्जी वेतन और फीस के रूप में 20,000 पाउंड (लगभग 21 लाख रुपये) तक वसूले जाते हैं। ●

अमेजन ने कॉर्पोरेट कर्मचारियों की संख्या में की कटौती

अमेजन ने 16,000 अतिरिक्त कॉर्पोरेट नौकरियों में कटौती की पुष्टि की है। इसके साथ ही अक्टूबर में शुरू हुई लगभग 30,000 पदों को खत्म करने की योजना पूरी हो गई है। कंपनी ने कहा कि यह कटौती, जो उसके कॉर्पोरेट कार्यबल का लगभग 10% है, प्रबंधन को सुव्यवस्थित करने और लालफीताशाही को कम करने के उद्देश्य से की गई है। हालांकि अमेजन के 15 लाख कर्मचारियों में से अधिकांश ऑपरेशंस में काम करते हैं, लेकिन इस कटौती ने स्टाफ के बीच चिंता पैदा कर दी है।

अल-मलिकी की वापसी से इराक में तनाव

इराक में पूर्व प्रधानमंत्री नूरी अल-मलिकी की सत्ता में वापसी की खबरों के बीच राजनीतिक तनाव फिर से बढ़ गया है। मलिकी, जिन्होंने 2006 से 2014 तक शासन किया था, पर सांप्रदायिक विभाजन को गहरा करने और भ्रष्टाचार व कुप्रबंधन का आरोप है। उनके कार्यकाल के दौरान ही इराकी सेना कमजोर हुई थी, जिससे इस्लामिक स्टेट को बिना किसी प्रतिरोध के मोसुल पर कब्जा करने का मौका मिला था। ●

जर्मनी ने ऊर्जा और कल्याणकारी सुधारों पर दिया जोर

आर्थिक दबावों और बदलते ऊर्जा परिदृश्य के बीच, जर्मनी की सरकार ने इस साल बड़े ऊर्जा और कल्याण सुधारों की घोषणा की है। अर्थव्यवस्था मंत्री कथेरिना रीचे ने बताया कि इस साल 12 गीगावाट नए बिजली संयंत्रों, मुख्य रूप से गैस आधारित, के लिए निविदाएं जारी की जाएंगी। ये संयंत्र अक्षय ऊर्जा स्रोतों की उत्पादन कमी के समय आवश्यक बैकअप प्रदान करेंगे। रीचे ने कहा कि इस पहल का उद्देश्य जर्मनी को 2045 तक कार्बन न्यूट्रल बनाने के राष्ट्रीय लक्ष्य को मजबूत करना है। साथ ही, सरकार ने कल्याणकारी प्रणाली में भी व्यापक सुधार करने की योजना बनाई है। इसमें लाभों को सरल और तेज़ बनाने, प्रक्रिया में नौकरशाही कम करने और डिजिटल सेवाओं का विस्तार शामिल है। श्रम मंत्री बर्बेल बास ने कहा कि सुधारों का उद्देश्य नागरिकों के लिए प्रणाली को अधिक निष्पक्ष, पारदर्शी और प्रभावी बनाना है, साथ ही लाभों में किसी तरह की कटौती नहीं की जाएगी। इन उपायों से जर्मनी की सामाजिक सुरक्षा और ऊर्जा सुरक्षा दोनों मजबूत होंगी। ●

ग्वाटेमाला में 'घेराबंदी की स्थिति' लागू

ग्वाटेमाला ने जेल विद्रोह और गैंग हिंसा के बाद 30 दिनों के लिए 'घेराबंदी की स्थिति' लागू कर दी है। राष्ट्रपति बर्नार्डो अरेवालो ने कहा कि यह कदम व्यवस्था बहाल करने और सुरक्षा बलों को अधिक अधिकार देने के लिए आवश्यक था, जबकि कुछ नागरिक स्वतंत्रताओं को अस्थायी रूप से सीमित किया गया है। हिंसा तब भड़की जब अधिकारियों ने तीन जेलों पर फिर से नियंत्रण किया, जहां गैंग के कैदी गार्डों को बंधक बनाए हुए थे। इस कार्रवाई का उद्देश्य गैंगों के उत्पात को रोकना और कानून व्यवस्था को बहाल करना है। ●

राजनीतिक तनाव से आर्कटिक वैज्ञानिक सहयोग खतरे में

यूरोप और अमेरिका के बीच कमजोर होते राजनीतिक संबंधों के कारण आर्कटिक क्षेत्र, जिसमें ग्रीनलैंड भी शामिल है, में दशकों से चले आ रहे अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक सहयोग पर संकट मंडरा रहा है। शोधकर्ताओं ने चेतावनी दी है कि व्यापार, रक्षा और भू-राजनीति से जुड़े विवाद इस महत्वपूर्ण सहयोग को बाधित कर सकते हैं, जो शीत युद्ध के दौरान भी जारी रहा था। ग्रीनलैंड की विशाल बर्फ तेजी से पिघल रही है और इसे दुनिया के लिए एक महत्वपूर्ण 'अर्ली वार्निंग सिस्टम' माना जाता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इस क्षेत्र में पर्यावरणीय और सामाजिक शोध अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसे राजनीतिक मतभेदों की बलि नहीं चढ़ाना चाहिए। ●

सुप्रीम कोर्ट ने यूजीसी के नए नियमों पर रोक लगाई

सुप्रीम कोर्ट ने 29 जनवरी को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) के उन नए नियमों पर अंतरिम रोक लगा दी, जिन्हें विश्वविद्यालयों और कॉलेजों से जातिगत भेदभाव खत्म करने के उद्देश्य से लाया गया था। यूजीसी ने 23 जनवरी को 'उच्च शिक्षा संस्थानों में समानता को बढ़ावा देने संबंधी विनियम, 2026' को जारी किया था। इसके विरोध में सुप्रीम कोर्ट में कई याचिकाएं दाखिल की गई थीं। समाचार सूत्रों के मुताबिक, कोर्ट ने कहा कि रेगुलेशन 3 (सी) में स्पष्टता नहीं है और इसका दुरुपयोग किया जा सकता है। यह रेगुलेशन जाति-आधारित भेदभाव को परिभाषित करता है। कोर्ट ने कहा कि इसकी भाषा में बदलाव किए जाने की जरूरत है और जब तक नियमों को दोबारा से नहीं लिखा जाता, तब तक ये स्थगित रहेंगे। ●

क्या पायलट की गलती से हुआ अजित पवार का प्लेन क्रैश?

महाराष्ट्र के उपमुख्यमंत्री अजित पवार और चार अन्य लोगों की बीते दिन प्लेन क्रैश में मौत हो गई। इस घटना की जांच भी चल रही है। ताजा घटनाक्रम में पता चला है कि खराब विजिबिलिटी में लैंडिंग के दौरान पायलट की संभावित गलती की वजह से वह प्लेन क्रैश हुआ। यह जानकारी घटना की शुरुआती जांच के नतीजों के आधार पर दी गई है। सूत्रों के हवाले से बताया गया कि यह विमान का दूसरा लैंडिंग का प्रयास था और बारामती में विजिबिलिटी खराब थी। प्लेन क्रैश के शुरुआती विश्लेषण से पता चलता है कि शायद पायलट ने गलत अंदाजा लगाया था। ●

कलकत्ता हाई कोर्ट का बंगाल सरकार को अल्टीमेटम

कलकत्ता हाई कोर्ट ने आदेश दिया है कि 31 मार्च तक बंगाल सरकार सीमा पर बाड़ लगाने के लिए बीएसएफ को जमीन सौंप दे। जिससे भारत-बांग्लादेश सीमा के संवेदनशील क्षेत्रों में कंटीले तार की बाड़ लगाने का काम शीघ्र पूरा किया जाए। आरोप है कि राज्य सरकार सीमा पर बाड़ लगाने के लिए अधिग्रहीत भूमि नहीं सौंप रही है। इसके खिलाफ पूर्व सैन्य अधिकारी डा. सुब्रत साहा ने हाई कोर्ट में याचिका दायर की गई थी। मालूम हो कि बंगाल की 2,216 किमी लंबी अंतरराष्ट्रीय सीमा बांग्लादेश से लगती है। ●

अब भारत में बनेंगे सुपरजेट-100 विमान

भारत की एयरोस्पेस कंपनी हिंदुस्तान एरोनॉटिक्स लिमिटेड और रूस की यूनाइटेड एयरक्राफ्ट कॉर्पोरेशन ने नागरिक उड्डयन क्षेत्र में एक ऐतिहासिक साझेदारी की है। दरअसल, HAL और UAC ने हैदराबाद में आयोजित 'विंग्स इंडिया' प्रदर्शनी के दौरान रूस के प्रसिद्ध सुपरजेट-100 (SJ-100) विमान के भारत में उत्पादन के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते का मुख्य उद्देश्य 'मेक इन इंडिया' पहल को सशक्त बनाना है। ●

दवा कंपनियों को अनुसंधान के लिए टेस्ट लाइसेंस लेने की जरूरत नहीं

केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने फार्मा उद्योग को सुढ़ बनाने के उद्देश्य से नए औषधि एवं क्लीनिकल परीक्षण नियमों, 2019 में संशोधनों को अधिसूचित किया है। नए नियमों के तहत अब दवा कंपनियों को अनुसंधान और विश्लेषण के संबंध में कम मात्रा में दवाओं के निर्माण के लिए टेस्ट लाइसेंस लेने की जरूरत नहीं होगी। हालांकि इसके लिए उन्हें कुछ मामलों को छोड़कर केंद्रीय औषधि मानक नियंत्रण संगठन को आनलाइन सूचना देनी होगी। ●

भारत की काउंटर-टेरर रणनीति में बदलाव

पूर्व सेना प्रमुख जनरल मनोज नरवणे के अनुसार, भारत की आतंकवाद-रोधी रणनीति में हाल के वर्षों में महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिला है। उन्होंने कहा कि 'ऑपरेशन सिंदूर' इस बदलाव का प्रतीक है, जिसमें भारत ने रक्षात्मक रवैये से आगे बढ़कर सक्रिय और निर्णायक कार्रवाई की नीति अपनाई है। नई रणनीति में खुफिया एजेंसियों के बेहतर समन्वय, आधुनिक तकनीक के इस्तेमाल और सीमा पार आतंकवाद पर कड़े जवाब पर जोर दिया गया है। जनरल नरवणे ने कहा कि इस दृष्टिकोण से भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा अधिक मजबूत हुई है और भविष्य की आतंकवादी चुनौतियों से निपटने की क्षमता बढ़ी है। ●

असम में 'मिया मुसलमानों' पर टिप्पणी से राजनीतिक बवाल, कांग्रेस जाएगी अदालत

असम के मुख्यमंत्री हिमंत बिस्वा सरमा के "मिया मुसलमानों" को लेकर दिए गए बयान से राज्य की राजनीति में तीखा विवाद खड़ा हो गया है। चुनावी माहौल के बीच सरमा ने कथित तौर पर कहा कि वह "मिया मुसलमानों को परेशान करने" के पक्ष में हैं ताकि वे असम छोड़कर चले जाएं। उनके इस बयान को लेकर विपक्षी दल कांग्रेस ने कड़ी आपत्ति जताई है और इसे नफरत फैलाने वाला बताते हुए कानूनी कदम उठाने की तैयारी की है। असम में बंगाली भाषी मुसलमानों को 'मिया' कहा जाता है, जिन्हें भाजपा लंबे समय से अवैध घुसपैठिया बताती रही है। मुख्यमंत्री ने यह भी कहा कि उन्होंने भाजपा कार्यकर्ताओं से विशेष मतदाता सूची पुनरीक्षण के दौरान 'फॉर्म 7' के जरिए आपत्तियां दर्ज कराने को कहा है। फॉर्म 7 का उपयोग मतदाता सूची में नाम शामिल करने या हटाने पर आपत्ति के लिए होता है। कांग्रेस ने आरोप लगाया है कि बिना ठोस कारणों के सामूहिक रूप से फॉर्म 7 दाखिल किए जा रहे हैं, जिससे अल्पसंख्यकों को निशाना बनाया जा रहा है। इस मामले में चुनाव आयोग के हस्तक्षेप की भी मांग की गई है। ●

नया Aadhaar App लॉन्च, अब घर बैठे होगा आधार अपडेट

यूआईडीएआई ने नया Aadhaar ऐप लॉन्च किया है जिससे आधार से जुड़े कई काम अब मोबाइल से ही किए जा सकेंगे। इस ऐप के जरिए यूजर्स को बार-बार आधार सेंटर जाने या फोटोकॉपी साथ रखने की जरूरत नहीं होगी। ऐप में ऑफलाइन आधार वेरिफिकेशन, सीमित जानकारी शेयर करने, मोबाइल नंबर और पता अपडेट करने जैसे फीचर्स दिए गए हैं। इससे आधार डेटा ज्यादा सुरक्षित रहेगा और गलत इस्तेमाल का खतरा कम होगा। UIDAI का कहना है कि यह ऐप आधार को अधिक सुरक्षित, आसान और डिजिटल बनाने की दिशा में बड़ा कदम है। ●

लैंड फॉर जॉब केस में लालू परिवार पर शिकंजा

लैंड फॉर जॉब घोटाले में आरजेडी सुप्रीमो लालू प्रसाद यादव और उनके परिवार की कानूनी मुश्किलें और बढ़ गई हैं। दिल्ली की राउज एवेन्यू कोर्ट ने लालू यादव, उनकी पत्नी राबड़ी देवी, बेटे तेजस्वी यादव समेत कुल 41 आरोपियों के खिलाफ मुकदमा चलाने को मंजूरी दे दी है। अदालत ने सीबीआई द्वारा दाखिल चार्जशीट में प्रथम दृष्टया पर्याप्त सबूत पाए हैं और कहा है कि मामले में नियमित ट्रायल आवश्यक है। इसके साथ ही यह केस जांच के चरण से निकलकर सुनवाई के दौर में पहुंच गया है। कोर्ट ने आदेश दिया है कि 9 मार्च से इस मामले में डे-टू-डे ट्रायल शुरू होगा। हालांकि इसी मामले में 52 लोगों को राहत देते हुए बरी कर दिया गया है। पिछली सुनवाई में स्पेशल जज विशाल गोग्ने ने कड़ी टिप्पणी करते हुए कहा था कि सरकारी नौकरियों के बदले जमीन लेने की एक संगठित और सुनियोजित साजिश रची गई। ●

श्रीराजेश, संपादक

वर्चस्व का तिमिर

बनाम साझेदारी का सूर्य

जर्जर विश्व-व्यवस्था और 'नव-उपनिवेशवाद 2.0' के संधिकाल में भारत-यूरोपीय साझेदारी बहुध्रुवीयता का नया 'उत्तरायण' रच रही है। यह आलेख वर्चस्व के तिमिर और विवेक के आलोक के बीच उभरती नवीन वैश्विक चेतना तथा रणनीतिक स्वायत्तता का गम्भीर दार्शनिक अन्वेषण है।

काल के भाल पर अंकित नियति की रेखाएं जब अपना मार्ग बदलती हैं, तो परिवर्तन की वह पदचाप किसी सामान्य आहट की भांति नहीं, बल्कि एक महासांस्कृतिक विप्लव की भांति सुनाई देती है। इक्कीसवीं सदी का यह तृतीय दशक वैश्विक विस्थापन का वह कालखंड है, जहां पुरातन विश्व-व्यवस्था की जर्जर अट्टालिकाएं अपने ही भार से ध्वस्त हो रही हैं। यह वह संधिकाल है जहां द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात गढ़ी गई 'नियम-आधारित मर्यादाएं' अब केवल स्मृतियों का अवशेष मात्र रह गई हैं। इस वैचारिक शून्य और राजनीतिक अंधड़ के बीच, एक ओर 'नव-उपनिवेशवाद 2.0' की वह विषाक्त बेली है जो प्रभुत्व के नए प्रतिमान गढ़ रही है, तो दूसरी ओर भारत-यूरोपीय संघ के मध्य अंकुरित होता वह विश्वास है, जो संरक्षणवाद के तिमिर में संतुलन और प्रज्ञा का प्रकाश-पुंज बनकर उभरा है।

यह द्वंद्व केवल नीतियों का नहीं है, अपितु वैश्विक आत्मा के दो ध्रुवों का है—एक जो शक्ति के उन्माद में 'स्व' की श्रेष्ठता खोजता है और दूसरा जो साझेदारी के 'उत्तरायण' में लोक-मंगल का मार्ग। अमेरिकी राजनीति के धरातल पर डोनाल्ड ट्रंप का प्रादुर्भाव उस साम्राज्यवादी व्याकरण की आधुनिक पुनरावृत्ति है, जहां 'सहमति' का स्थान 'दबाव' ने ले लिया है। ग्रीनलैंड के अधिग्रहण की सुगबुगाहट हो या अंतरराष्ट्रीय संधियों का तिरस्कार, ट्रंप का 'ट्रांजैक्शनल' दर्शन स्पष्ट उद्घोष करता है कि नियम केवल तभी तक वंदनीय हैं, जब तक वे अमेरिकी महात्वाकांक्षाओं की दासी बने रहें। यह वही औपनिवेशिक चेतना है, जिसने उन्नीसवीं सदी में तोपों और लड़ाकू जहाजों के माध्यम से विश्व का दलन किया था, किंतु आज उसने स्वयं को प्रतिबंधों, आपूर्ति श्रृंखलाओं, डेटा संप्रभुता और तकनीक के सूक्ष्म आवरण में आवृत कर लिया है।

इसे ही 'नव-उपनिवेशवाद 2.0' की संज्ञा दी जा सकती है—जहां संप्रभुता का हनन भूमि हड़पने के लिए नहीं, अपितु वैश्विक 'निर्भरता' के नए भूगोल निर्मित करने के लिए किया जाता है। अब उपनिवेश मानचित्रों पर नहीं उकेरे जाते, बल्कि वे डेटा की सूक्ष्म तरंगों, एल्गोरिदम के मायाजाल, सेमीकंडक्टर चिप्स की कड़ियों और वित्तीय बाज़ारों की अदृश्य बेड़ियों में निर्मित हो रहे हैं। इस अराजक यथार्थ ने उस उदारवादी धारणा को ध्वस्त कर दिया है कि वैश्विक व्यवस्था केवल नैतिकता से संचालित हो सकती है। परिणामतः, यूरोप जैसा समृद्ध भू-भाग, जो दशकों तक अटलांटिक सुरक्षा की शीतल छांव में निश्चिंत था, आज स्वयं को एक दारुण अस्तित्वगत शून्य में पा रहा है। उसे यह मर्मभेदी बोध हो चुका है कि सुरक्षा का वह कवच, जिसे वह अपनी नियति मानता था, अब उसकी अपनी 'रणनीतिक स्वायत्तता' के लिए एक बोझिल श्रृंखला बन चुका है।

इसी वैश्विक भंवर के बीच भारत-यूरोपीय संघ के मध्य हुआ मुक्त व्यापार समझौता (एफटीए) एक व्यापारिक संविदा मात्र नहीं, बल्कि एक नवीन विश्व-दृष्टि का दार्शनिक घोषणापत्र है। जब संपूर्ण विश्व संकीर्णता, गुटबंदी और अविश्वास के 'दक्षिणायन' में विलीन हो रहा था, तब नई दिल्ली और ब्रुसेल्स ने प्रज्ञा के 'उत्तरायण' की दिशा चुनी। भारतीय वांग्मय में उत्तरायण वह पवित्र कालखंड है जो अंधकार के समापन और चेतना के ऊर्ध्वगमन का प्रतीक है। यह समझौता उस बहुध्रुवीय व्यवस्था की आधारशिला है जहां वाशिंगटन और बीजिंग की द्विध्रुवीय चक्की के बीच एक 'संतुलित तृतीय ध्रुव' का उदय अनिवार्य हो गया है। भारत यूरोप के लिए अब केवल एक विशाल उपभोक्ता बाज़ार नहीं, बल्कि उसकी रणनीतिक संप्रभुता का गौरवमयी सहयात्री है। इसी प्रकार, यूरोप भारत के लिए केवल निवेशक नहीं, बल्कि मानवीय मूल्यों और तकनीकी मानकों का सह-साधक है।

यह साझेदारी प्रमाणित करती है कि वैश्वीकरण का समाधान 'डी-ग्लोबलाइजेशन' नहीं, 'री-ग्लोबलाइजेशन' है—जहां वैश्विक संबंधों का आधार शोषण पर नहीं, बल्कि परस्पर पूरकता और साझी गरिमा पर आधारित हो।

दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो ट्रंप की नीतियां इतिहास के उस प्रतिगामी प्रवाह का प्रतिनिधित्व करती हैं जो सभ्यता को पुनः 'जंगल के कानून' की ओर ढकेलना चाहती है, जहां केवल शक्ति ही अधिकार का मापदंड थी। वहीं, भारत-ईयू की यह संविदा उस भविष्योन्मुखी विवेक का परिचायक है जो साझी समृद्धि में ही विश्व की स्थिरता देखती है। एक ओर अहंकार का प्रलयंकारी नृत्य है, तो दूसरी ओर सामंजस्य का सृजन।

इतिहास की वीथिकाएं साक्षी हैं कि भय और लोभ पर निर्मित साम्राज्य समय की एक ही करवट में रेत के घरोंदों की भांति ढह जाते हैं, जबकि साझा मूल्यों की खाद से सींचे गए संबंध युगों तक अपनी सुवास बिखेरते हैं। आज जब नव-उपनिवेशवाद की जंजीरें एक बार फिर मानवता की आत्मा को जकड़ने का कुत्सित प्रयास कर रही हैं, तब भारत-यूरोप की यह साझेदारी उन बेड़ियों को पिघला देने वाला एक प्रखर वैचारिक ताप है। यही वह महान संकल्प है जिसे हमें सूचनाओं के इस कोलाहलपूर्ण बाज़ार में सुरक्षित रखना है। क्योंकि जिस राष्ट्र और जिस सभ्यता का वैचारिक धरातल मृतप्राय हो जाता है, वह अपनी स्वाधीनता की रक्षा कभी नहीं कर पाता। ●

srirajesh.journalist @srirajesh editor@cultcurrent.com

वैश्विक कूटनीति का 'उत्तरायण'

मदर ऑफ ऑल डील

राकेश नरवाल

अठारह वर्षों की कूटनीतिक जड़ता को तोड़ते हुए भारत–ईयू मुक्त व्यापार समझौता केवल आर्थिक करार नहीं, बल्कि बहुध्रुवीय विश्व-व्यवस्था की ओर बढ़ता एक निर्णायक कदम है। 'मदर ऑफ ऑल डील्स' भारत को व्यापार, तकनीक और रणनीति—तीनों स्तरों पर वैश्विक धुरी के रूप में स्थापित करती है।

भू-राजनीतिक गठबंधन से आर्थिक समझौते से तक

भारत-ईयू एफटीए की यात्रा किसी आधुनिक महाकाव्य के संघर्ष से कम नहीं रही। इसकी शुरुआत 2007 में हुई थी, लेकिन 2013 तक आते-आते यह वार्ताओं के बोझ तले दबकर कोमा में चली गई। मुख्य विवाद 'ऑटोमोबाइल' और 'शराब' पर भारत के उच्च शुल्कों और पेशेवरों की आवाजाही पर यूरोप के कड़े रुख को लेकर था। 2021 में पुर्तगाल के पोर्टो शिखर सम्मेलन में इसे पुनर्जीवित किया गया। अंततः, 2024-25 में वैश्विक व्यापार युद्ध की आहट और रूस-यूक्रेन संघर्ष ने दोनों पक्षों को 'व्यावहारिक समझौते' के लिए विवश किया। अठारह वर्षों के इस 'कूटनीतिक वनवास' के बाद जब संधि पर हस्ताक्षर हुए, तो यह भारतीय मेधा और यूरोपीय धैर्य की सामूहिक विजय के रूप में सामने आई।

जनवरी 2026 की उन बर्फीली और ठिठुरती रातों के बीच, जब नई दिल्ली की रायसीना हिल्स गणतंत्र दिवस की भव्यता के आलोक में देदीप्यमान थी, तब वैश्विक कूटनीति के गलियारों में एक ऐसी ऊष्मा का संचार हो रहा था जिसने पिछले अठारह वर्षों की कूटनीतिक जड़ता को पिघला दिया। यह ऊष्मा थी—भारत और यूरोपीय संघ (ईयू) के बीच उस 'मुक्त व्यापार समझौते' (एफटीए) की परिणति, जिसे इतिहास के पन्नों में एक 'वैचारिक और आर्थिक संक्रांति' के रूप में दर्ज किया जाएगा। 27 जनवरी 2026 को आसमान से बरसते बारिश की बूंदों के बीच यह तारीख केवल कैलेंडर का एक पन्ना नहीं, बल्कि भारतीय कूटनीति के 'मध्याह्न सूर्य' का उद्घोष थी। दो विशाल लोकतांत्रिक शक्तियों ने जब एक-दूसरे का हाथ थामकर उस संधि पर हस्ताक्षर किए, जिसे यूरोपीय आयोग की अध्यक्ष उर्सुला वॉन डेर लेयेन ने 'मदर ऑफ ऑल डील्स' (सभी समझौतों की जननी) की संज्ञा दी, तो वह **'मदर ऑफ ऑल डील्स'** के लागू होने के साथ ही भारतीय उपभोक्ताओं के लिए 'यूरोपीय विलासिता' और यूरोपीय निर्माताओं के लिए 'भारतीय सामर्थ्य' के नए द्वार खुलेंगे।

1. **लग्जरी कारों का लोकतांत्रिकरणः** भारत ने लंबे समय से अपने घरेलू ऑटो उद्योग को 100-110 प्रतिशत के भारी शुल्कों के पीछे सुरक्षित रखा था। इस संधि ने उस दीवार को ढहा दिया है। बीएमडब्ल्यू, ऑडी और मर्सिडीज जैसी कारें, जिनकी कीमत में आधा हिस्सा केवल टैक्स का होता था, अब 40 प्रतिशत शुल्क के साथ भारतीय सड़कों पर अधिक सुलभ होंगी। आने वाले समय में यह शुल्क 10 प्रतिशत तक आ जाएगा, जिससे भारत न केवल इन कारों का बाज़ार, बल्कि एक वैश्विक निर्माण केंद्र भी बनेगा। यह एलन मस्क जैसे वैश्विक दिग्गजों के लिए भी एक संदेश है कि भारत के द्वार अब 'नियम-आधारित व्यवस्था' के तहत सभी के लिए खुले हैं।
2. **प्रीमियम वाइन और स्पिरिट्सः** फ्रांस के बोरदौ से लेकर इटली के टस्कनी और स्पेन के रियोजा तक के अंगूर के बागानों की महक अब भारतीय ड्राइंग रूम्स में अधिक सहजता से घुलेगी। 150 प्रतिशत के दमघोंटू शुल्क को घटाकर 20 प्रतिशत तक लाने का निर्णय यूरोपीय कृषि-

केवल दो बाज़ारों का मिलन नहीं था, बल्कि भविष्य के एक नए बहुध्रुवीय विश्व-क्रम का शंखनाद था।

यह समझौता उस समय धरातल पर उतरा है जब वैश्विक व्यवस्था एक भयावह विखंडन के दौर से गुजर रही है। एक ओर अटलांटिक के पार से आने वाली हवाएं 'अमेरिका फर्स्ट' के कठोर और अप्रत्याशित संरक्षणवाद की कड़वाहट से भरी हैं, तो दूसरी ओर पूर्व का 'ड्रैगन' अपनी आर्थिक आक्रामकता और 'डेब्ट-ट्रैप कूटनीति' से दुनिया की आपूर्ति श्रृंखलाओं को बंधक बना रहा है। ऐसे में नई दिल्ली और ब्रुसेल्स का यह मिलन वैश्विक अर्थव्यवस्था के क्षितिज पर एक ऐसे प्रकाश-स्तंभ के समान है, जो न केवल स्थिरता का संदेश देता है, बल्कि यह भी सिद्ध करता है कि लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित साझा समृद्धि अब भी संभव है।

'उत्तरायण' का दार्शनिक और कूटनीतिक रूपक

यूरोपीय आयोग की अध्यक्ष उर्सुला वॉन डेर लेयेन ने जब इस समझौते पर हस्ताक्षर किए, तो उनके शब्दों में केवल कूटनीतिक औपचारिकता नहीं, बल्कि एक गहरी सांस्कृतिक और दार्शनिक अंतर्दृष्टि थी। उन्होंने इस समझौते की तुलना भारत के पवित्र पर्व 'मकर संक्रांति' से करते हुए एक अद्भुत रूपक गढ़ा। उन्होंने

भारत-ईयू एफटीए केवल व्यापारिक समझौता नहीं, बल्कि अमेरिका-चीन के ध्रुवीकरण के बीच भारत के उभरते 'तीसरे ध्रुव' की घोषणा है। यह करार भारत को वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं, रणनीतिक स्वायत्तता और लोकतांत्रिक विश्व व्यवस्था का केंद्रीय स्तंभ बनाता है।

प्रधानमंत्री मोदी की ओर देखते हुए कहा, 'आज नई दिल्ली में खड़े होकर मुझे भारत के उस प्राचीन ज्ञान की याद आ रही है जो सूर्य की गति में जीवन का दर्शन खोजता है। यह समझौता उस समय संपन्न हुआ है जब भारत सूर्य के उत्तरायण का उत्सव मना रहा है। जिस प्रकार सूर्य मकर राशि में प्रवेश कर अंधकार को पराजित करता है और उत्तरी गोलार्ध में प्रकाश और ऊर्जा का विस्तार करता है, ठीक उसी प्रकार यह 'मदर ऑफ ऑल डील्स' भारत और यूरोप के संबंधों में अठारह वर्षों से व्याप्त संशय, जड़ता और बाधाओं के अंधकार को समाप्त कर एक नई ऊर्जा का संचार करेगी। आज से हमारे संबंध 'दक्षिणायन' के संकोच से निकलकर 'उत्तरायण' के आत्मविश्वास में प्रवेश कर चुके हैं।'

उर्सुला का यह रूपक अत्यंत मारक और सटीक था। 2007 से लेकर 2025 तक, यह वार्ता कूटनीति के 'हिमयुग' में फँसी रही। कभी यह कृषि और डेयरी के पेचीदा सवालों पर ठिठकी, तो कभी डेटा सुरक्षा, श्रम मानकों और बौद्धिक संपदा के चक्रव्यूह में उलझी रही। लेकिन जनवरी 2026 में, जैसे ही सूर्य ने अपनी दिशा बदली, वैसे ही दोनों पक्षों की कूटनीतिक इच्छाशक्ति ने उन सभी ऐतिहासिक अवरोधों को भस्म कर दिया। यह 'उत्तरायण' केवल खगोलीय नहीं, बल्कि वैचारिक था—जहां यूरोप ने यह

निर्यातकों के लिए एक जैकपॉट है। इसके बदले में, भारत ने अपने कृषि उत्पादों के लिए सख्त यूरोपीय स्वच्छता मानकों में रियायतें प्राप्त की हैं। यह सांस्कृतिक आदान-प्रदान का एक नया अध्याय है, जहां खान-पान और जीवनशैली के माध्यम से दो सभ्यताएं करीब आएंगी।

3. **भारतीय परिधान और रत्न-आभूषण:** भारत के कपड़ा, चमड़ा और रत्न-आभूषण जैसे श्रम-प्रधान क्षेत्रों के लिए यूरोप का बाज़ार अब एक 'खुला आसमान' है। अब तक बांग्लादेश और वियतनाम जैसे देशों को मिलने वाले 'ड्यूटी-फ्री' लाभ के कारण भारतीय निर्यातक पिछड़ रहे थे, लेकिन अब शून्य शुल्क के साथ भारतीय 'मेक इन इंडिया' उत्पाद यूरोप के हर बुटीक और स्टोर की शोभा बढ़ाएंगे। इससे भारत में लाखों नए रोजगार सृजित होंगे, जो हमारे जनसांख्यिकीय लाभांश को हकीकत में बदलेंगे।

सेवाओं का सेतु और डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर

भारत की असली शक्ति उसकी मेधा और उसकी सेवा अर्थव्यवस्था में निहित है। 'मदर ऑफ ऑल डील्स' ने भारतीय आईटी पेशेवरों के लिए यूरोप के 27 देशों में 'मोड-4' सेवाओं के तहत आसान वीज़ा और आवाजाही सुनिश्चित की है। भारत ने चतुरता के साथ 'डेटा सिक्योर' स्टेटस की मांग को इस संधि का हिस्सा बनाया है, जिससे भारतीय टेक कंपनियां अब बिना किसी कानूनी बाधा के यूरोपीय नागरिकों के डेटा को प्रोसेस कर सकेंगी।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यूरोपीय संघ अब भारत के 'डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर' (यूपीआई, ओएनडीसी, और आधार) को अपनाने में रुचि दिखा रहा है। अमेरिकी बिग-टेक कंपनियों के एकाधिकार को चुनौती देने के लिए यूरोप, भारत के ओपन-सोर्स डिजिटल मॉडल को एक विकल्प के रूप में देख रहा

इस एफटीए ने भारत की संरक्षणवादी दीवारों को तोड़ते हुए श्रम-प्रधान उद्योगों, सेवाओं और डिजिटल अर्थव्यवस्था के लिए यूरोप के द्वार खोले हैं। यह समझौता भारत को केवल उपभोक्ता नहीं, बल्कि नियम-निर्माता और वैश्विक आर्थिक शक्ति के रूप में स्थापित करता है।

स्वीकार किया कि भारत के बिना उसकी 'रणनीतिक स्वायत्तता' अधूरी है, और भारत ने यह पहचाना कि यूरोप उसकी वैश्विक महत्वाकांक्षाओं के लिए सबसे भरोसेमंद और स्थिर भागीदार है।

भू-राजनीतिक कुरुक्षेत्र

इस महा-संधि की गहराई को समझने के लिए हमें उस वैश्विक कुरुक्षेत्र का अवलोकन करना होगा जहां यह आकार ले रही है। वाशिंगटन में डोनाल्ड ट्रम्प की सत्ता में वापसी ने 'ट्रांस-अटलांटिक' और 'इंडो-पैसिफिक' संबंधों की सहजता को एक झटके में अनिश्चितता के भँवर में डाल दिया। ट्रम्प के दूसरे कार्यकाल की 'आक्रामक टैरिफ नीति' ने भारत जैसे रणनीतिक सहयोगियों पर भी 50 प्रतिशत तक के भारी आयात शुल्क थोप दिए। अमेरिका का यह 'आर्थिक राष्ट्रवाद' यूरोप के लिए एक गहरे विश्वासघात के समान था, जो दशकों तक वाशिंगटन को अपना सुरक्षा कवच मानता रहा था। ट्रम्प की 'ग्रेसिया' और यूरोप के प्रति उनकी बेरुखी ने ब्रुसेल्स को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि अब अटलांटिक के पार का उसका पुराना मित्र अब भरोसेमंद नहीं रहा।

इधर, चीन और रूस के बीच की 'सीमा-विहीन मित्रता' और बीजिंग की 'बेल्ट एंड रोड' पहल के माध्यम से यूरोप की आर्थिक घेरेबंदी ने ब्रुसेल्स के नीति-निर्माताओं की नींद उड़ा दी थी। यूरोप को अब यह आभास हो गया कि बीजिंग पर उसकी अत्यधिक निर्भरता उसकी संप्रभुता के लिए एक घातक 'ट्रोजन हॉर्स' सिद्ध हो सकती है। ऐसे में, भारत—जो 1.45 बिलियन की आबादी, 4.2 ट्रिलियन डॉलर की जीडीपी और विश्व की सबसे युवा कार्यबल का स्वामी है—यूरोप के लिए केवल एक बाज़ार नहीं, बल्कि एक 'अस्तित्वगत अनिवार्यता' बनकर उभरा।

यह समझौता भारत की कूटनीति का वह 'मास्टरस्ट्रोक' है, जिसने अमेरिका और चीन के द्वि-ध्रुवीय तनाव के बीच एक तीसरा ध्रुव खड़ा कर दिया है। 'मदर ऑफ ऑल डील्स' ने भारत को वह 'लीवरेज' प्रदान किया है, जिससे वह अब वाशिंगटन और बीजिंग दोनों की आंखों में आंखें डालकर अपनी शर्तों पर वैश्विक व्यापार का व्याकरण लिख सकता है। ●

सीबीएएम और 'ग्रीन' दीवार की कूटनीतिक काट

इस ऐतिहासिक संधि के बीच 'कार्बन बॉर्डर एडजस्टमेंट मैकेनिज्म' (सीबीएएम) एक बड़ा कांटा बनी हुई है। यूरोपीय संघ की यह नीति भारतीय स्टील, एल्युमीनियम और सीमेंट जैसे उत्पादों पर उनके कार्बन उत्सर्जन के आधार पर अतिरिक्त टैक्स लगाने का प्रावधान करती है। भारतीय वार्ताकारों ने कुशलतापूर्वक इस संधि में एक 'स्थायी संवाद तंत्र' को शामिल करवाया है। जर्मनी द्वारा घोषित 10 बिलियन यूरो की 'ग्रीन पार्टनरशिप' और ग्रीन हाइड्रोजन कॉरिडोर इसी दीवार को ढहाने की कोशिश है। भारत अब स्वच्छ ऊर्जा के माध्यम से यूरोप के 'नेट जीरो' लक्ष्यों का सबसे बड़ा भागीदार बनेगा, जिससे भविष्य में ये टैक्स बाधाएं बेअसर हो जाएंगी। यह व्यापार और पर्यावरण के बीच एक नया 'ग्लोबल स्टैंडर्ड' सेट करेगा।

जर्मनी और अन्य यूरोपीय देशों में बढ़ती 'जनसांख्यिकीय मरुस्थलीकरण' और भारत का 'जनसांख्यिकीय लाभांश' इस समझौते के पीछे का एक बड़ा चालक है। जर्मनी द्वारा भारतीय कुशल श्रमिकों के लिए वीजा कोटा 20,000 से बढ़ाकर 90,000 करना केवल एक शुरुआत है। यह समझौता

सुनिश्चित करता है कि भारतीय इंजीनियर, डॉक्टर, नर्स और शोधकर्ता अब यूरोप की अर्थव्यवस्था को नई ऊर्जा प्रदान करेंगे, जबकि भारत को 'रेमिटेंस' और वैश्विक अनुभव का लाभ मिलेगा। यह 'ब्रेन ड्रेन' की पुरानी अवधारणा को 'ब्रेन सर्कुलेशन' में बदल रहा है।

नई दिल्ली—विश्व की नई और विश्वसनीय धुरी

27 जनवरी 2026 की वह शाम, जब नई दिल्ली के आकाश में गणतंत्र दिवस के जश्न की आतिशबाजी गूंज रही थी, तब भारत-यूरोपीय संघ के बीच हस्ताक्षरित यह महा-संधि उस आतिशबाजी से भी अधिक दीप्तिमान लग रही थी। प्रधानमंत्री मोदी और उर्सुला वॉन डेर लेयेन के बीच का वह हैंडशेक केवल दो नेताओं का मिलना नहीं था; वह दो महाद्वीपों के सामूहिक विवेक और साझी नियति का प्रकटीकरण था।

'मदर ऑफ ऑल डील्स' ने सिद्ध कर दिया है कि भारत अब वैश्विक भू-राजनीति का वह 'स्थिरता का लंगर' है, जिसके बिना विश्व व्यवस्था का जहाज़ डगमगा सकता है। उर्सुला का 'मकर संक्रांति' और 'उत्तरायण' का रूपक आज चरितार्थ हो रहा है। भारत और यूरोप के संबंधों में अब वह संकोच नहीं है, वह झिझक नहीं है। अब यहाँ केवल और केवल 'साझा नियति' का बोध है।

यह संधि भारत को केवल एक आर्थिक महाशक्ति नहीं बनाएगी, बल्कि यह उसे उस 'नैतिक गुरु' के रूप में स्थापित करेगी जो खंडित होती दुनिया को जोड़ना जानता है। जिस प्रकार उत्तरायण के बाद सूर्य की किरणें प्रत्येक जीव को नई ऊर्जा देती हैं, उसी प्रकार यह समझौता भारत के मध्यम वर्ग, किसानों, उद्यमियों और युवाओं के जीवन में समृद्धि का नया प्रकाश लेकर आएगा।

अराजक होती दुनिया में, जहाँ ट्रंप का अमेरिका अपने खोल में सिमट रहा है और शी जिनपिंग का चीन विस्तारवाद की आग उगल रहा है, भारत और यूरोप की यह साझेदारी मानवता के लिए एक 'सुरक्षित गलियारा' है। यह संधि केवल 'मुनाफे' के लिए नहीं है; यह 'मूल्यों' की रक्षा के लिए है। 'मदर ऑफ ऑल डील्स' के इस शिलालेख पर जो इबारत लिखी गई है, वह आने वाली सदियों तक गूँजती रहेगी—कि जब दो विशाल लोकतंत्र हाथ मिलाते हैं, तो इतिहास की धारा अपनी दिशा बदल लेती है। नई दिल्ली अब केवल भारत की राजधानी नहीं, बल्कि एक ऐसी वैश्विक धुरी बन गई है, जहाँ से एक संतुलित, बहुध्रुवीय और समृद्ध विश्व का 'उत्तरायण' शुरू हो चुका है। यह 21वीं सदी के वैश्विक व्यापार का वह 'शंखनाद' है, जिसकी प्रतिध्वनि बर्लिन से ब्रुसेल्स और कच्छ से कामरूप तक सुनाई देगी। ●

है। यह 'डिजिटल कूटनीति' भारत को एक 'सॉफ्ट पावर' से 'टेक्नोलॉजिकल पावर' में रूपांतरित कर रही है।

वहीं, 'बौद्धिक संपदा अधिकार' के मामले में भारत ने अपनी 'लोकहितकारी' छवि को अक्षुण्ण रखा है। यूरोपीय दवा कंपनियों की 'एवरग्रीनिंग' की कोशिशों के खिलाफ भारत ने अपनी जेनेरिक दवाइयों के हितों की रक्षा की है। यह न केवल भारतीय फार्मा उद्योग के लिए जीत है, बल्कि यह उस 'विश्व-मित्र' की भूमिका का भी निर्वाह है, जो पूरी दुनिया को सस्ती और जीवनरक्षक दवाएं उपलब्ध कराने के लिए संकल्पित है।

व्यापार से परे का सामरिक बंधन

यह समझौता केवल आर्थिक नहीं, बल्कि 'रणनीतिक' भी है। चांसलर फ्रेडरिक मर्ज़ की हालिया यात्रा और जर्मनी की 'थिसनक्रुप' कंपनी के साथ भारत में पनडुब्बियों के सह-निर्माण का 8 बिलियन यूरो का समझौता इस संधि की सुरक्षा-आधारित गहराई को दर्शाता है। यूरोप अब यह समझ चुका है कि चीन की हिंद-प्रशांत में बढ़ती आक्रामकता को रोकने के लिए भारत एक 'सुरक्षा प्रदाता' की भूमिका में अनिवार्य है।

फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रों की 'इंडिया-एआई इम्पैक्ट समिट' में भागीदारी और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के वैश्विक मानकों को तय करने में भारत के साथ सहयोग, यह सिद्ध करता है कि 21वीं सदी की 'अल्गोरिथमिक जंग' में यूरोप और भारत एक ही पाले में खड़े हैं। अब तकनीक केवल सिलिकॉन वैली का एकाधिकार नहीं रहेगी; उसे अब 'लोकतांत्रिक मूल्यों' और 'मानवीय विवेक' की कसौटी पर परखा जाएगा, जिसमें भारत की भूमिका केंद्रीय होगी। ●

केंद्रीय बजट 2026-27

उजला भविष्य, धुंधला वर्तमान

केंद्रीय बजट 2026–27 ने भारत को आधुनिक, तकनीक-संचालित और वैश्विक प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था बनाने की महत्त्वाकांक्षा दिखाई है। लेकिन बुनियादी ढांचे की चमक के पीछे सामाजिक सुरक्षा, रोजगार और समावेशन की चुनौतियां और गहरी होती दिख रही हैं।

1 फरवरी, 2026 की उस धुंधली सुबह, जब दिल्ली की फिजाओं में वसंत की आहट और कूटनीति की गर्माहट एक साथ घुल रही थी, संसद की देहरी पर वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण के कदमों की धमक ने केवल एक वित्तीय बहीखाता ही नहीं खोला, बल्कि राष्ट्र की नियति का एक नया महाकाव्य लिखना शुरू किया। यह बजट दस्तावेज़ केवल सरकारी तिजोरी के नफ़े-नुकसान का लेखा-जोखा नहीं था, बल्कि एक ऐसा वैचारिक कुरुक्षेत्र बनकर उभरा जहां 'रणनीतिक महत्त्वाकांक्षा' और 'जमीनी यथार्थ' की तलवारें आपस में टकरा रही थीं।

महज कुछ दिन पहले, 27 जनवरी को यूरोपीय संघ के साथ हुई 'मदर ऑफ ऑल डील्स' की गूंज ने जिस भारत को वैश्विक आर्थिक रंगमंच के जाज्वल्यमान नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया था, 1 फरवरी के बजटीय यथार्थ और दलाल स्ट्रीट के लाल निशान (बाज़ार की गिरावट) ने उसी भव्य उत्सव पर संशय और चिंताओं का एक घना कोहरा फैला दिया। यह बजट एक ऐसा 'हाइब्रिड महायंत्र' प्रतीत होता है, जिसकी धमनियों में चीन जैसी रफ्तार, दक्षिण कोरिया जैसी

तकनीक और अमेरिका जैसी डिजिटल मेधा का रक्त तो प्रवाहित हो रहा है, लेकिन सामाजिक सुरक्षा और समावेशिता के मोर्चे पर इसके होंठों पर स्कैंडिनेवियाई देशों जैसी कोई स्पष्ट मुस्कान नहीं है। यह 'राष्ट्र की स्वर्ण-मुकुट वाली अमीरी' और 'नागरिक की नंगे पैर वाली समृद्धि' के बीच के उस अंतहीन फासले की पड़ताल करता है, जहां अर्थव्यवस्था का इस्पाती इंजन तो गगनभेदी गर्जना कर रहा है, लेकिन उस पर सवार आम आदमी के लिए सुरक्षा का 'कुशन' आज भी तार-तार और अधूरा है।

बाज़ार का रक्तपात

बजट के प्रस्तुत होते ही दलाल स्ट्रीट का जो दृश्य उभरा, वह किसी दुःस्वप्न से कम नहीं था। सेंसेक्स का का गिरना और निफ्टी का नीचे की ओर फिसलना केवल एक तकनीकी गिरावट नहीं थी; यह निवेशकों की उस अनिश्चितता और जोखिम-संवेदनशीलता का प्रतिबिंब था जिसे 'इंडिया वीआईएक्स' के उछाल ने प्रमाणित किया। पिछले छह वर्षों में बजट-डे पर यह सबसे नकारात्मक प्रतिक्रिया थी। इस रक्तपात के पीछे 'डेरिवेटिव्स' पर प्रतिभूति लेनदेन कर में की गई वृद्धि एक बड़ा कारक रही, जिसने ट्रेडिंग की लागत बढ़ाकर बाज़ार की तरलता पर प्रहार किया।

लेकिन क्या यह गिरावट केवल कर नीति की प्रतिक्रिया थी? गहराई से देखें तो यह विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों के उस निरंतर पलायन का परिणाम था, जिसने 2025 से अब तक लगभग 23 अरब डॉलर का बाह्य प्रवाह देखा है। बाज़ार को उम्मीद थी कि सरकार विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए किसी 'क्रांतिकारी प्रोत्साहन' की घोषणा करेगी, परंतु बजट के 'टैक्टिकल' या व्यावहारिक दृष्टिकोण ने उस उम्मीद को धराशायी कर दिया। बैंकिंग, रक्षा और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के शेयरों में आई गिरावट यह संकेत देती है कि निवेशक अभी भी 'दीर्घकालिक वादों' और 'तात्कालिक लाभ' के बीच के संतुलन को लेकर आशंकित हैं। यद्यपि पर्यटन, आतिथ्य और वस्त्र उद्योग जैसे क्षेत्रों में सुधार की किरणें दिखीं, लेकिन समग्र बाज़ार ने इसे 'भविष्योन्मुखी पर वर्तमान के लिए कठोर' दस्तावेज़ के रूप में ही पचाया।

वैश्विक प्रतिमानों का कोलाज

यदि हम केंद्रीय बजट 2026-27 के वैचारिक मानचित्र को वैश्विक परिप्रेक्ष्य के फलक पर रखकर देखें, तो यह किसी एक राष्ट्र की यांत्रिक नकल मात्र नहीं, बल्कि विभिन्न अंतरराष्ट्रीय विकास-दर्शनों का एक अनूठा और जटिल 'कोलाज' प्रतीत होता है। इस बजटीय रूपरेखा में चीन के उस महाकाय 'बुनियादी ढांचा-आधारित विकास मॉडल' का स्पष्ट अक्स झलकता है, जहां बारह लाख बीस हजार करोड़ रुपये के विशाल पूंजीगत व्यय, अंतहीन माल ढुलाई

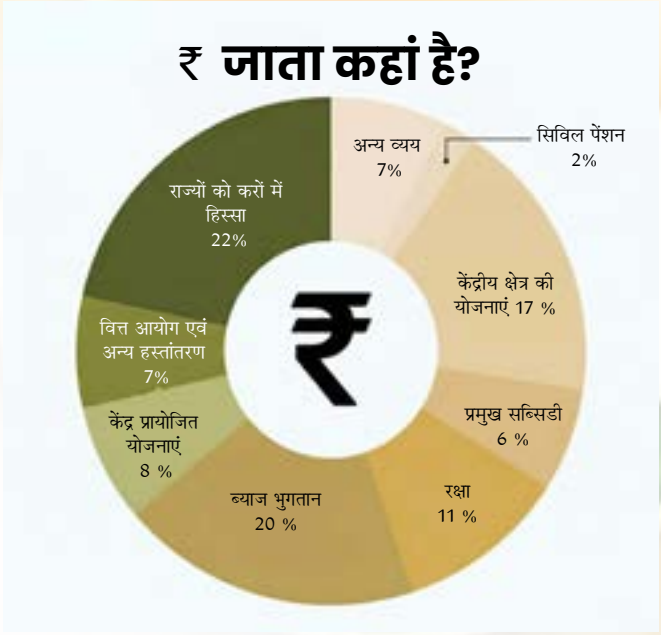

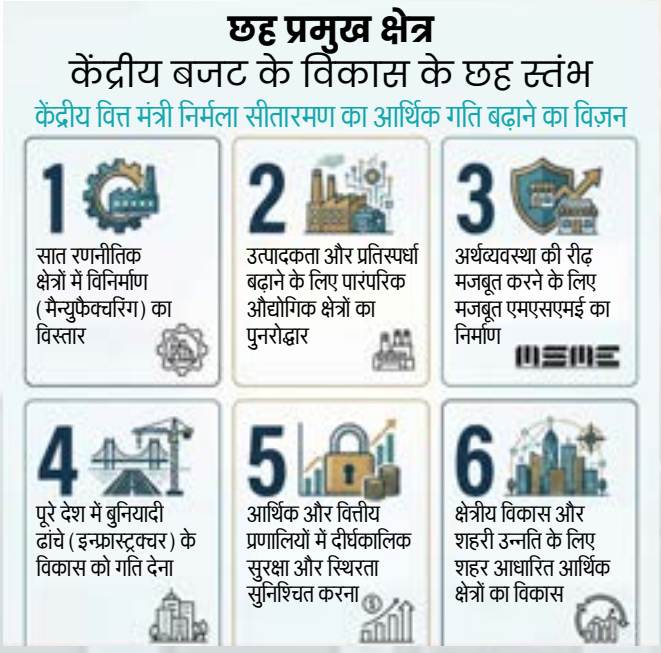

गलियारों और रणनीतिक औद्योगिक गलियारों के माध्यम से भारत अपनी आर्थिक धमनियों को एक वैश्विक महाशक्ति बनने के लिए तैयार कर रहा है; हालांकि यहां बुनियादी अंतर यह है कि भारत इस लक्ष्य को निजी निवेश की संजीवनी से हासिल करने की चेष्टा कर रहा है, जबकि चीन ने इसे राज्य के पूर्ण नियंत्रण की लोहे की मुट्ठी से प्राप्त किया था।

इसी वैचारिक बुनावट में दक्षिण कोरिया की वह 'उच्च-तकनीकी छलांग' भी गहराई से समाहित है, जहां 'सेमीकंडक्टर मिशन 2.0'

और 'जैव-भेषज शक्ति' जैसे महत्त्वाकांक्षी प्रावधान भारत को एक पारंपरिक अर्थव्यवस्था से ऊपर उठाकर उस 'टेक-पावर' में रूपांतरित करने का स्वप्न देखते हैं, जिसने कभी कोरिया को विश्व पटल पर स्थापित किया था। इसके साथ ही, 'भारत-विस्तार' जैसी कृत्रिम मेधा आधारित कृषि पद्धतियां और डेटा केंद्रों को मिलने वाला दीर्घकालिक कर अवकाश सीधे तौर पर अमेरिका के उस 'नवाचार-प्रेरित मॉडल' का अनुसरण करता है, जिसने डिजिटल सेवाओं और ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था को आधुनिक युग की नई मुद्रा बना दिया है।

परंतु, विकास के इन कठोर और जाज्वल्यमान इंजनों को अपनाते समय भारत ने उन राष्ट्रों के उस 'सॉफ्ट कुशन' या मानवीय सुरक्षा जाल को कहीं पीछे छोड़ दिया है, जिन्होंने अपनी औद्योगिक समृद्धि के साथ-साथ अपनी जड़ों को भी सींचा था। दक्षिण कोरिया ने जहां अपनी तकनीकी प्रगति के साथ-साथ सार्वभौमिक शिक्षा की नींव को अभेद्य बनाया और अमेरिका ने अपने नवाचार के साथ मज़बूत बेरोज़गारी भत्ते और स्वास्थ्य सुरक्षा के तंत्र को जोड़ा, वहीं भारत ने एक 'ग्रोथ स्टेट' के वैभव और रफ्तार को तो अंगीकार कर लिया है, लेकिन वह 'वेलफेयर स्टेट' की उस स्कैंडिनेवियाई मानवीय सुरक्षा, सामाजिक स्थिरता और समावेशिता की छांव से अभी भी मीलों दूर खड़ा दिखाई देता है। यह विसंगति संकेत देती है कि भारत ने भविष्य की मशीनों को तो बुद्धि दे दी है, लेकिन वर्तमान के मनुष्य को मिलने वाली सामाजिक सुरक्षा के तंतु आज भी बेहद महीन और अनिश्चित बने हुए हैं।

रक्षा और तकनीक का द्वंद्व

रक्षा क्षेत्र में खर्च की वृद्धि और घरेलू उत्पादन को बढ़ावा देना भारत को एक 'डिफेंस मैन्युफैक्चरिंग हब' बनाने की दिशा में रणनीतिक संप्रभुता का उपकरण तो है, लेकिन इसका आर्थिक प्रभाव विरोधाभासी है। यह 'राष्ट्रीय सुरक्षा केंद्रित विकास' है, न कि जन-आधारित आर्थिक राहत। रक्षा जैसे 'हाई-टेक' क्षेत्रों में निवेश से रणनीतिक बढ़त तो मिलती है, लेकिन रोज़गार सृजन की दर धीमी रहती है।

यही विरोधाभास तकनीक और एआई (AI) के मोर्चे पर भी दिखता है। 'हाई-प्रोडक्टिविटी मॉडल' के रूप में एआई भारत को वैश्विक सेवा महाशक्ति तो बना सकता है, लेकिन यह 'डिजिटल डिवाइड' को और गहरा करने का जोखिम भी पैदा करता है। जब विकास केवल 'हाई-स्किल' युवाओं और 'टेक-सेक्टर' तक सीमित हो जाता है, तो वह 'एलीट स्किल ग्रोथ मॉडल' बन जाता है, जिससे व्यापक मानव पूंजी का सुधार पीछे छूट जाता है।

बाज़ार के हवाले 'अन्नदाता'

कृषि क्षेत्र में बजट का दर्शन अब 'सब्सिडी मॉडल' से हटकर 'एग्री-एंटरप्राइज मॉडल' की ओर बढ़ गया है। 'भारत-विस्तार' और 'वैल्यू चेन' पर ज़ोर देना कृषि को एक बिज़नेस सेक्टर बनाने की कोशिश है। तकनीकी दृष्टि से यह जाज्वल्यमान तो है, लेकिन 'न्यूनतम समर्थन मूल्य' (एमएसपी) और मूल्य सुरक्षा पर स्पष्ट नीति का अभाव छोटे किसानों को बाज़ार की अनिश्चितताओं के बीच 'जोखिम' में डाल देता है। यह कृषि को 'सुरक्षा सेक्टर' से हटाकर 'बिजनेस सेक्टर' बनाने की ओर एक निर्णायक कदम है, जिसके सामाजिक परिणाम अनिश्चित हो सकते हैं।

सेवा उद्योग बनाम सामाजिक अधिकार

शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में बजट की प्राथमिकताएं 'ऊपर से नीचे' की ओर हैं। यूनिवर्सिटी टाउनशिप और स्टेम संस्थानों में गर्ल्स हॉस्टल जैसे प्रावधान उच्च शिक्षा को उद्योग से जोड़ने के लिए सराहनीय हैं, लेकिन प्राथमिक शिक्षा की गिरती गुणवत्ता और ग्रामीण स्कूलों की उपेक्षा यह दर्शाती है कि हमारा ध्यान 'व्यापक मानव पूंजी' के बजाय 'विशिष्ट कार्यबल' तैयार करने पर अधिक है।

स्वास्थ्य क्षेत्र में भी 'ट्रॉमा सेंटर' और 'मेडिकल टूरिज्म हब' की स्थापना स्वास्थ्य को एक 'सेवा उद्योग' की तरह देखती है, न कि एक 'सामाजिक अधिकार' की तरह। आम नागरिक के लिए इलाज की लागत कम करने या प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं को सुदृढ़ करने पर बजट का मौन यह संकेत देता है कि सरकार का ध्यान 'ग्लोबल हेल्थ इंडस्ट्री' से कमाई पर अधिक है।

हाशिए पर खड़ा बहुमत

इस पूरे 'ग्रैंड नैरेटिव' में जो वर्ग सबसे अधिक उपेक्षित महसूस करता है, वह है भारत की अस्सी प्रतिशत श्रमशक्ति वाला 'असंगठित

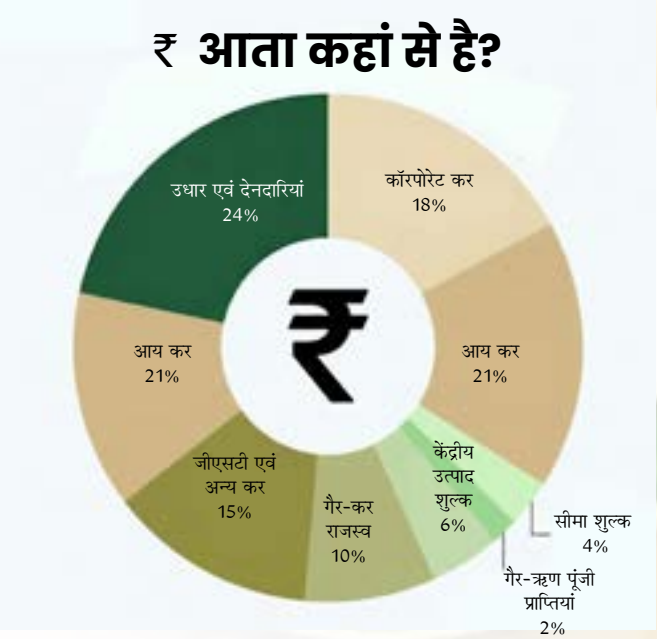

क्षेत्र'। सामाजिक सुरक्षा कवच का अभाव, पेंशन में वृद्धि की कमी और महंगाई राहत का न होना इस वर्ग के लिए विकास के फल को कड़वा बना देता है। वरिष्ठ नागरिकों के लिए भी बजट में कोई ठोस राहत नहीं है, जो यह दर्शाता है कि 'ग्रोथ-ओरिएंटेड' नीतियों में अनुत्पादक माने जाने वाले वर्गों के लिए स्थान संकुचित होता जा रहा है।

'ट्रिकल-डाउन' की परीक्षा और भविष्य का कोहरा

केंद्रीय बजट 2026-27 एक महत्त्वाकांक्षी, भविष्योन्मुखी और साहसी दस्तावेज़ है, जो भारत को एक आधुनिक और प्रतिस्पर्धी शक्ति बनाने के लिए 'हार्ड इंजन' (बुनियादी ढांचा और तकनीक) पर दांव लगाता है। सरकार का अटल विश्वास है कि ₹पहले राष्ट्र अमीर बनेगा, फिर नागरिक समृद्ध होंगे।₹ यह 'ट्रिकल-डाउन' प्रभाव की उस थ्योरी पर आधारित है जिसकी सफलता भारत जैसे असमान समाज में हमेशा संदेह के घेरे में रही है।

बाज़ार की तात्कालिक गिरावट शायद एक भावनात्मक प्रतिक्रिया हो, लेकिन इसके पीछे छिपे आर्थिक प्रश्न स्थायी हैं। क्या रोज़गार संकट केवल इंफ्रास्ट्रक्चर से हल होगा? क्या तकनीक आधारित विकास सामाजिक असमानता को कम करेगा? और क्या राज्यों के साथ वित्तीय तालमेल बना रहेगा?

'विकसित भारत' का मार्ग केवल इस्पात के ढांचों और एआई एल्गोरिदम से होकर नहीं गुज़रता। इसके लिए एक 'सॉफ्ट कुशन'—यानी मज़बूत सामाजिक सुरक्षा, आय की समानता और प्राथमिक शिक्षा-स्वास्थ्य—अनिवार्य है। 2026-27 का यह बजट भारत को एक 'आर्थिक महाशक्ति' बनाने की नींव तो रखता है, लेकिन एक 'समृद्ध नागरिक' बनाने की दिशा में अभी भी कई पन्ने अनलिखे छोड़

देता है। आने वाला समय यह तय करेगा कि क्या यह 'मध्याह्न सूर्य' सबको रोशनी देगा या केवल उन ऊंचाइयों को चमकाएगा जहां तक आम आदमी के हाथ नहीं पहुँचते। कूटनीति के 'उत्तरायण' में उर्सुला वॉन डेर लेयेन ने जिस उजाले की बात की थी, वह तभी सार्थक होगा जब वह दिल्ली के डेटा सेंटरों से निकलकर पश्चिम बंगाल के जूट मिलों और विदर्भ के कपास के खेतों तक पहुंचेगा। ●

यह आलेख कल्ट करंट की संपादकीय टीम द्वारा देश के प्रतिष्ठित एवं ख्यातिप्राप्त अर्थशास्त्रियों के विचारों एवं विश्लेषण के आधार पर तैयार किया गया है।

'कमल' का 'नवीन' अध्याय

जलज श्रीवास्तव

दिल्ली में जनवरी 2026 की सुबह केवल एक संगठनात्मक बदलाव की साक्षी नहीं बनी। नितिन नवीन की ताजपोशी के साथ भाजपा ने यह संकेत दे दिया कि कमल अब केवल सत्ता नहीं, उत्तराधिकार की राजनीति भी गढ़ रहा है—जहाँ चयन रणनीति है और भविष्य लक्ष्य।

जनवरी 2026 की गुनगुनी धूप में दिल्ली के दीनदयाल उपाध्याय मार्ग स्थित भारतीय जनता पार्टी के मुख्यालय पर एक नया इतिहास लिखा गया। जब नितिन नवीन के नाम की घोषणा भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष के रूप में हुई, तो राजनीतिक गलियारों में वही सन्नाटा और विस्मय छा गया,

जो अक्सर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और गृह मंत्री अमित शाह के फैसलों के बाद देखने को मिलता है। जे.पी. नड्डा के शांत और संगठनात्मक कार्यकाल के बाद, कमान अब एक युवा, ऊर्जावान और अपेक्षाकृत 'सरप्राइज' चेहरे के हाथ में है।

नितिन नवीन की यह नियुक्ति केवल एक पदोन्नति नहीं है - यह भाजपा के भीतर चल रहे उस भगीरथ मंथन का परिणाम है, जो भविष्य की पीढ़ियों के लिए नेतृत्व की एक नई पौध तैयार कर रहा है। इसे भाजपा के समर्थकों द्वारा एक उत्सव के रूप में मनाया जा रहा है—एक युवा अध्यक्ष जो भविष्य के भारत की आकांक्षाओं और पार्टी के 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के बीच सेतु बनेगा। प्रधानमंत्री मोदी ने इस अवसर का उपयोग एक बार फिर भाजपा को 'पार्टी विद अ डिफरेंस' के रूप में ब्रांड करने के लिए किया है।

लेकिन, ढोल-नगाड़ों के शोर और कार्यकर्ताओं के उत्साह के बीच, एक गंभीर और चुभने वाला प्रश्न राजनीतिक विश्लेषकों के मन में कुलबुला रहा है—क्या नितिन नवीन की यह नियुक्ति वास्तव में एक लोकतांत्रिक 'चुनाव' है, या यह शीर्ष नेतृत्व द्वारा किया गया एक चतुर 'चयन' है? क्या भाजपा वास्तव में कांग्रेस और अन्य वंशवादी दलों से अलग है, या फिर यहां भी 'हाईकमान' की संस्कृति ने बस एक नया, भगवा चोला ओढ़ लिया है?

'पार्टी विद अ डिफरेंस': हकीकत या सियासी जुमला?

भाजपा का सबसे बड़ा यूएसपी यह रहा है कि वह खुद को वंशवाद से मुक्त बताती है। अटल बिहारी वाजपेयी से लेकर लाल कृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी, कुशाभाऊ ठाकरे, बंगारू लक्ष्मण, वेंकैया नायडू, राजनाथ सिंह, नितिन गडकरी, अमित शाह और जे.पी. नड्डा तक—इस सूची में कोई भी ऐसा नाम नहीं है जो किसी परिवार विशेष का वारिस होने के कारण अध्यक्ष बना हो। अब नितिन नवीन का नाम भी इसी गौरवशाली सूची में जुड़ गया है।

यह सत्य है कि कांग्रेस के विपरीत, जहां अध्यक्ष पद अक्सर 'गांधी परिवार' की जागीर समझा जाता रहा है (कुछ अपवाद के बावजूद, जहां रिमोट कंट्रोल की चर्चाएं आम हैं), भाजपा ने हमेशा सामान्य पृष्ठभूमि वाले नेताओं को शीर्ष पर बिठाया है। लेकिन प्रश्न 'पृष्ठभूमि' का नहीं, 'प्रक्रिया' का है। क्या भाजपा का अध्यक्ष बनने की प्रक्रिया लोकतांत्रिक है?

सच्चाई यह है कि भले ही भाजपा अध्यक्ष गैर-वंशवादी होते हैं, लेकिन उनकी नियुक्ति की प्रक्रिया को आधुनिक लोकतंत्र की कसौटी पर 'स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव' नहीं कहा जा सकता। यहां 'गेटकीपर' की भूमिका अत्यंत प्रबल है। राजनीतिक विज्ञान की भाषा में 'गेटकीपर' वे वरिष्ठ और शक्तिशाली नेता होते हैं जो संगठन के भीतर किसे प्रवेश मिलेगा और कौन शीर्ष पर पहुंचेगा, इसका निर्णय लेते हैं। भारत में जिसे हम 'हाईकमान कल्चर' कहते हैं, वह असल में यही गेटकीपिंग है।

भाजपा, जो लगातार तीन लोकसभा चुनाव जीतकर भारत की 'सिस्टम-डिफाइनिंग पार्टी' बन चुकी है, इस घटनाक्रम में कोई अपवाद नहीं है। पार्टी के भीतर सुधार के संकेत नगण्य हैं। यहां चुनाव नहीं, बल्कि 'सहमति' के नाम पर 'परोक्ष चयन' होता है।

चुनाव बनाम चयन: कांग्रेस और भाजपा का विरोधाभास

एक स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के दो अनिवार्य तत्व होते हैं—परिणाम की अनिश्चितता और निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा। दुर्भाग्य से, भारतीय लोकतंत्र के भीतर काम करने वाले राजनीतिक दलों में ये दोनों ही तत्व गायब हैं।

भाजपा के मामले में, नितिन नवीन की नियुक्ति प्रक्रिया 'निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा' की कसौटी पर खरी नहीं उतरती, लेकिन इसमें एक तत्व ऐसा है जो इसे कांग्रेस से अलग और बेहद प्रभावी बनाता है—वह है 'परिणाम की अनिश्चितता'।

जब कांग्रेस में अध्यक्ष पद का चुनाव हुआ, तो परिणाम पहले से तय माना जा रहा था। शशि थरूर का चुनाव लड़ना महज एक औपचारिकता थी - सबको पता था कि 'गांधी परिवार' का आशीर्वाद जिसे प्राप्त होगा (खड़गे), वही जीतेगा। वहां कोई सस्पेंस नहीं था, कोई रोमांच नहीं था।

नितिन नवीन का भाजपा अध्यक्ष बनना केवल नेतृत्व परिवर्तन नहीं, बल्कि पार्टी की 'स्मार्ट पॉलिटिक्स' का संकेत है। यह नियुक्ति लोकतांत्रिक चुनाव और हाईकमान चयन के द्वंद्व को उजागर करते हुए बताती है कि भाजपा अनिश्चितता, मेरिट और भविष्य की राजनीति पर दांव लगा रही है।

इसके विपरीत, भाजपा में नितिन नवीन के नाम की घोषणा से पहले, शायद ही किसी को—यहां तक कि बड़े-बड़े मीडिया घरानों और राजनीतिक पंडितों को—भनक थी कि वे अगले अध्यक्ष होंगे। जब उन्हें पहले अंतरिम अध्यक्ष बनाया गया, तभी यह स्पष्ट हुआ कि 'शीर्ष नेतृत्व' (गेटकीपर्स) ने अपना मन बना लिया है।

यही 'अनिश्चितता' भाजपा की सबसे बड़ी ताकत है। यह पार्टी के करोड़ों कार्यकर्ताओं के भीतर एक अदम्य आशा और उत्साह का संचार करती है। जब एक सामान्य कार्यकर्ता देखता है कि नितिन नवीन जैसा युवा नेता, या मोहन यादव और विष्णु देव साय जैसे नेता अचानक मुख्यमंत्री बन सकते हैं, तो उसे विश्वास हो जाता है कि 'पार्टी में कोई भी कार्यकर्ता किसी भी पद पर पहुंच सकता है।' प्रधानमंत्री मोदी का यह कथन कि 'मैं पार्टी का एक कार्यकर्ता हूं,' इसी विश्वास को पुख्ता करने के लिए बार-बार दोहराया जाता है। नितिन नवीन की नियुक्ति इस नैरेटिव का ताजा और ठोस उदाहरण है।

लोकतंत्र की सीमाएं और 'गेटकीपर्स' का वर्चस्व

फिर भी, एक विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखें तो यह प्रक्रिया पार्टी के भीतर शक्ति का केंद्रीयकरण करती है। जब आम कार्यकर्ताओं को अपना नेता सीधे चुनने का अधिकार नहीं होता, तो पार्टी का अभिजात वर्ग प्रभावी रूप से निर्णय लेता है। नितिन नवीन को पहले अंतरिम अध्यक्ष घोषित करना और फिर पूर्णकालिक अध्यक्ष बनाना, एक स्पष्ट संकेत था कि हाईकमान ने किसे चुना है।

ऐसी स्थिति में, किसी अन्य नेता द्वारा नितिन नवीन को चुनौती देने का अर्थ केवल एक उम्मीदवार को चुनौती देना नहीं, बल्कि मोदी-शाह और आरएसएस के निर्णय को चुनौती देना होता। और आज की भाजपा में, ऐसा दुस्साहस करने की स्थिति में कोई नहीं है। हमने कांग्रेस में शशि थरूर का हश्र देखा है, जो चुनाव लड़ने के बाद से ही हाशिए पर धकेल दिए गए। पश्चिमी लोकतंत्रों में, जहां पार्टी के आंतरिक चुनाव में बहस होती है और प्रतिद्वंद्वियों को बाद में टीम में शामिल किया जाता है, भारतीय दल अभी उस परिपक्वता से कोसों दूर हैं। यहां चुनाव लड़ना 'बगावत' माना जाता है।अतः, नितिन नवीन 'निर्वाचित' अध्यक्ष नहीं, बल्कि 'चयनित' अध्यक्ष हैं। और जब 'चयन' होता है, तो उसके पीछे एक गहरी रणनीति होती है।

आशा और हकीकत के बीच का द्वंद्व

कुल मिलाकर, नितिन नवीन की नियुक्ति यह सिद्ध करती है कि संरचनात्मक रूप से भाजपा अन्य भारतीय राजनीतिक दलों से बहुत अलग नहीं है। यहां भी 'चुनाव' एक औपचारिकता है और असली निर्णय

बंद कमरों में 'गेटकीपर्स' द्वारा लिए जाते हैं। लोकतंत्र का जो आदर्श रूप—जहां कार्यकर्ता सीधे अपना नेता चुनें—वह यहां भी नदारद है।

किंतु, भाजपा ने इस 'अलोकतांत्रिक' प्रक्रिया को भी एक 'रणनीतिक हथियार' में बदल दिया है। अन्य दलों में जहाँ 'चयन' का परिणाम 'परिवारवाद' या 'यथास्थिति' होता है, वहीं भाजपा में 'चयन' का परिणाम 'अनिश्चितता' और 'मेरिट' होता है। यही वह जादुई तत्व है जो भाजपा के कैडर में ऊर्जा भरता है।

एक सामान्य भाजपा कार्यकर्ता नितिन नवीन में अपना भविष्य देखता है। उसे लगता है कि अगर वह भी मेहनत करेगा, तो 'गेटकीपर्स' की नजर उस पर भी पड़ेगी और वह भी फर्श से अर्श तक पहुंच सकता है। यही वह मनोवैज्ञानिक बढ़त है जो भाजपा को उसके प्रतिद्वंद्वियों, विशेषकर कांग्रेस, से मीलों आगे रखती है।

अतः, नितिन नवीन का अध्यक्ष बनना 'चुनाव' भले न हो, लेकिन यह भाजपा की उस 'स्मार्ट पॉलिटिक्स' का हिस्सा है, जिसने उसे भारत की सबसे दुर्जेय चुनावी मशीन बना दिया है। यह नियुक्ति बताती है कि भाजपा केवल वर्तमान का चुनाव नहीं जीतना चाहती, बल्कि वह भविष्य की बिसात पर अपने मोहरे सजा रही है—और नितिन नवीन उस बिसात के वजीर बनकर उभरे हैं।

प्रश्न यह नहीं है कि लोकतंत्र कितना गहरा है, प्रश्न यह है कि जीत की भूख कितनी तीव्र है। और इस मामले में, भाजपा का कोई सानी नहीं है। ●

नितिन नवीन: 'रणनीतिक चयन' के मायने

नितिन नवीन की ताजपोशी के पीछे भाजपा के शीर्ष नेतृत्व की क्या सोच हो सकती है? इसे डिकोड करने के लिए कई परतें खोलनी होंगी।

पीढ़ीगत बदलाव

सबसे प्रमुख कारण उनकी उम्र है। नितिन नवीन युवा हैं। भाजपा का शीर्ष नेतृत्व—विशेषकर मोदी और शाह—2029 और उसके बाद के भारत की तैयारी कर रहा है। जे.पी. नड्डा एक संक्रमणकालीन अध्यक्ष थे। नवीन के रूप में पार्टी एक ऐसा चेहरा सामने लाई है जो अगले एक दशक तक संगठन को ऊर्जा दे सकता है और युवाओं के साथ कनेक्ट कर सकता है। यह भाजपा के 'स्मूथ ट्रांजिशन' (सहज सत्ता हस्तांतरण) की योजना का हिस्सा है।

कायस्थ समीकरण और 'भद्रलोक' की राजनीति

नितिन नवीन कायस्थ समुदाय से आते हैं। यद्यपि वे बिहार से हैं, लेकिन कायस्थों का प्रभाव हिंदी पट्टी के शहरों और विशेष रूप से पश्चिम बंगाल में महत्वपूर्ण है। बंगाल, जहां भाजपा अपनी जड़ें जमा चुकी है लेकिन सत्ता से दूर है, वहां 'भद्रलोक' वोट बैंक को साधने में नवीन की छवि मददगार हो सकती है। यह एक सूक्ष्म सोशल इंजीनियरिंग है।

क्षेत्रीय संतुलन का पावर-गेम

यह बिंदु सबसे महत्वपूर्ण है। वर्तमान में, भाजपा के संगठन महामंत्री—जो अध्यक्ष के बराबर ही शक्तिशाली पद होता है—बी.एल. संतोष हैं, जो दक्षिण भारत (कर्नाटक) से आते हैं। भाजपा के संविधान और कार्यशैली में क्षेत्रीय संतुलन का बहुत ध्यान रखा जाता है। चूंकि संगठन महामंत्री दक्षिण से हैं, इसलिए अध्यक्ष का उत्तर भारत से होना लगभग तय था। नितिन नवीन, बिहार से आकर, उस संतुलन को साधते हैं।

'गुजराती प्रभुत्व' की धारणा को तोड़ना

पिछले एक दशक में, विपक्ष और आलोचकों ने यह नैरेटिव गढ़ा है कि भाजपा और देश को 'दो गुजराती' (मोदी और शाह) चला रहे हैं। यह धारणा पार्टी के लिए हिंदी पट्टी और अन्य राज्यों में कभी-कभी असहजता पैदा करती है। नितिन नवीन की नियुक्ति इस धारणा को खंडित करने का एक सधा हुआ प्रयास है। एक 'बिहारी' को शीर्ष पद देकर, भाजपा ने संदेश दिया है कि उसका नेतृत्व अखिल भारतीय है और वह किसी एक राज्य के नेताओं तक सीमित नहीं है।

निष्ठा और परफॉर्मेंस

नितिन नवीन ने छत्तीसगढ़ में सह-प्रभारी के रूप में अपनी क्षमता साबित की थी, जहां भाजपा ने कांग्रेस को हराकर सत्ता में वापसी की। उनकी संगठनात्मक क्षमता और विचारधारा के प्रति निष्ठा ने उन्हें हाईकमान का विश्वासपात्र बनाया। यह चयन संदेश देता है कि जो 'डिलीवर' करेगा, उसे इनाम मिलेगा। ●

महाराष्ट्र

वंशवाद का अवसान एवं 'भगवा' सूर्योदय

संदीप कुमार

सह्याद्री की छाया में खड़ा महाराष्ट्र एक बार फिर इतिहास के मोड़ पर है। दशकों से वंशवाद, परिवारवाद और सत्ता के किलों में कैद यह राजनीति अब दरक चुकी है। जनवरी 2026 के जनादेश ने साफ कर दिया है—महाराष्ट्र में अब सरनेम नहीं, विचार और संगठन तय करेंगे, और भगवा सूर्योदय केवल प्रतीक नहीं, सत्ता का नया यथार्थ है।

भारत के पश्चिमी तट पर, अरब सागर की उत्तुंग लहरों से अठखेलियां करता और सह्याद्री की विशाल पर्वतमालाओं की ओट में बसा महाराष्ट्र, केवल एक राज्य नहीं, बल्कि भारतीय राजनीति की सबसे जटिल और जीवंत प्रयोगशाला है। यह छत्रपति शिवाजी महाराज की वीरभूमि है, जहां इतिहास तलवार की धार पर लिखा गया और राजनीति जनसेवा के संकल्प से पोषित हुई। किंतु, विडंबना देखिए कि पिछले कुछ दशकों में यह पुण्य भूमि चंद रसूखदार परिवारों की निजी जागीर बनकर रह गई थी। 'बारामती के पावर' से लेकर 'मातोश्री के आदेश' और 'दिल्ली दरबार (कांग्रेस)' की जी-हुजूरी—महाराष्ट्र की राजनीति इन्हीं तीन धुरों के इर्द-गिर्द घूमती रही।

परंतु, 15 जनवरी 2026 की सर्द हवाओं के बीच संपन्न हुए स्थानीय निकाय चुनावों के परिणामों ने इस पुरानी पटकथा को पूरी तरह से जलाकर राख कर दिया है। यह कोई सामान्य चुनाव नहीं था; यह 29 महानगर पालिकाओं, 893 वार्डों और 2,869 सीटों के लिए लड़ा गया एक महासमर था, जिसमें 3.48 करोड़ मतदाताओं—यानी लगभग एक यूरोपीय देश के बराबर की आबादी—ने अपने मताधिकार की आहुति दी। इन चुनावों में 29 में से 23 नगर निगमों पर भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी) का एकछत्र राज और देश की सबसे अमीर नगरपालिका—बृहन्मुंबई महानगर पालिका (बीएमसी)—पर फहराता भगवा ध्वज, केवल चुनावी आंकड़े नहीं हैं। यह एक उद्घोष है कि महाराष्ट्र अब वंशवाद, परिवारवाद और तुष्टिकरण की पुरानी बेड़ियों को तोड़कर 'न्यू इंडिया' के विजन के साथ कदमताल करने को तैयार है। यह एक 'साइलेंट रिवोल्यूशन' (मूक क्रांति) है, जिसने स्थापित क्षत्रपों के किलों को ढहा दिया है।

संवैधानिक मर्यादा का हनन और 'प्रशासक राज' का अंत

इस जनादेश का महत्व केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि संवैधानिक भी है। इन चुनावों ने उस 'प्रशासक राज' का अंत किया है जिसने लोकतंत्र के मूल ढांचे को ही बंधक बना रखा था। संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम, 1992 का अनुच्छेद 243यू(3) स्पष्ट रूप से कहता है कि किसी भी नगरपालिका के कार्यकाल की समाप्ति से पहले या विघटन के छह महीने के भीतर चुनाव संपन्न हो जाने चाहिए। किंतु महाराष्ट्र में इस संवैधानिक प्रावधान की धज्जियां उड़ाई गईं।

मुंबई जैसी वैश्विक नगरी में मार्च 2022 से जनवरी 2026 तक—लगभग चार वर्षों तक—कोई निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं था। सत्ता की बागडोर राज्य द्वारा नियुक्त आईएएस अधिकारियों (प्रशासकों) के हाथ में थी। ओबीसी आरक्षण और वार्ड परिसीमन की कानूनी पेचीदगियों की आड़ में जनता की आवाज को दबा दिया गया था। अब, जब पुणे, नागपुर, ठाणे, नासिक और मुंबई में नई निर्वाचित निकाय का गठन हुआ है, तो यह संवैधानिक शून्यता समाप्त हुई है। हालांकि, यह जीत बीजेपी की है, लेकिन यह जीत उस संवैधानिक लोकतंत्र की भी है जो नौकरशाही के चंगुल से मुक्त होकर वापस जन-प्रतिनिधियों के पास लौटा है।

मराठा गढ़ में 'ब्राह्मण पेशवा' का उदय

महाराष्ट्र की राजनीति का सबसे रोचक और ऐतिहासिक पहलू यह है कि जिस राज्य की सियासी नब्ज दशकों तक मराठा क्षत्रपों के हाथों में रही, आज वहां सत्ता का केंद्रबिंदु एक ब्राह्मण चेहरा—देवेंद्र फडणवीस—बनकर उभरा है। यशवंतराव चव्हाण से लेकर वसंतदादा पाटिल और शरद पवार तक, महाराष्ट्र की राजनीति का अलिखित संविधान यही था कि नेतृत्व की बागडोर केवल मराठा समुदाय के पास

रहेगी। लेकिन, देवेंद्र फडणवीस ने अपनी चाणक्य-नीति, धैर्य और अथक परिश्रम से इस मिथक को चकनाचूर कर दिया है।

हालिया चुनावों में मिली अभूतपूर्व सफलता का सेहरा निर्विवाद रूप से मुख्यमंत्री देवेंद्र फडणवीस के सिर बंधता है। वे अब केवल राज्य के नेता नहीं रहे, बल्कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के बाद के दौर में भारतीय जनता पार्टी के केंद्रीय नेतृत्व की अगली कतार में—योगी आदित्यनाथ और अमित शाह के समकक्ष—मजबूती से खड़े दिखाई दे रहे हैं। फडणवीस की यह विजय यात्रा 'माधव' (माली, धनगर, वंजारी) फॉर्मूले और ओबीसी समुदायों के बीच उनकी गहरी पैठ का परिणाम है। उन्होंने हिंदुत्व के व्यापक छाते के नीचे उन सभी उपेक्षित वर्गों को एकजुट किया, जो दशकों से मराठा वर्चस्व के कारण हाशिए पर थे। यह सोशल इंजीनियरिंग का वह मास्टरस्ट्रोक था, जिसकी काट न तो शरद पवार के पास थी और न ही उद्धव ठाकरे के पास।

नगरीय स्वायत्तता का भ्रम व 'रिमोट कंट्रोल' की राजनीति

यद्यपि इन चुनावों ने नगरों में 'जन-प्रतिनिधियों' की वापसी कराई है, लेकिन हमें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि इससे शहरों को वास्तविक स्वायत्तता मिल गई है। जैसा कि अंग्रेजी विश्लेषण में स्पष्ट है, भारत में—और विशेषकर महाराष्ट्र में—शहरी स्थानीय निकाय त्रि-स्तरीय ढांचे में काम करते हैं, लेकिन उनकी शक्ति अत्यंत सीमित है।

मुंबई का महापौर, जिसे शहर का 'प्रथम नागरिक' कहा जाता है और जिसके चुनाव को लेकर मीडिया में इतना कोलाहल मचता है, वास्तव में एक 'दंतहीन शेर' के समान है। बीएमसी अधिनियम की धारा 37 के तहत महापौर का चुनाव पार्षदों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से होता है। विकसित देशों के विपरीत, यहाँ महापौर के पास कार्यकारी शक्तियां नगण्य हैं। असली सत्ता 'म्यूनिसिपल कमिश्नर' के पास होती है, जो राज्य सरकार द्वारा नियुक्त एक आईएएस अधिकारी होता है।

बीजेपी की यह जीत इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि 'स्टैंडिंग कमेटी' (स्थायी समिति)—जो टेंडर और बजट पास करती है—अब पार्टी के नियंत्रण में होगी। लेकिन शहर का विकास मसौदा, एफएसआई के नियम और बड़े इंफ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट्स का अंतिम निर्णय मंत्रालय (राज्य सरकार) के पास ही सुरक्षित रहता है। चूंकि राज्य में भी देवेंद्र फडणवीस की सरकार है और अब निगमों में भी बीजेपी का बहुमत है, इसलिए यह 'डबल इंजन' की सरकार शहरों के विकास को नई गति दे सकती है। लेकिन यह भी सत्य है कि यह 'स्थानीय चुनाव' महज एक नाम था; असल में यह राष्ट्रीय और राज्य दलों के बीच स्थानीय बिसात पर लड़ा गया महायुद्ध था, जिसमें स्थानीय मुद्दे कहीं पीछे छूट गए और चेहरे 'मोदी-फडणवीस' के ही सामने रहे।

बारामती का ढहता बुर्ज और 'पवार प्लेबुक' का अंत

कभी पश्चिम महाराष्ट्र को 'शुगर बेल्ट' (चीनी का कटोरा) कहा जाता था, जिसकी मिठास केवल पवार परिवार और उनके सहयोगियों की तिजोरियों तक सीमित थी। सहकारी समितियों, चीनी मिलों और जिला बैंकों के नेटवर्क के माध्यम से शरद पवार ने जो अभेद्य किला बनाया था, वह आज ताश के पत्तों की तरह बिखर चुका है।

एनसीपी (राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी) के दोनों धड़ों—चाचा शरद पवार और भतीजे अजित पवार—का अपने ही गढ़ पुणे और पिंपरी-चिंचवाड़ में सफाया हो जाना, एक युग के अंत का संकेत है। यह केवल चुनावी हार नहीं है; यह उस सामंती मानसिकता की हार है, जो मानती थी कि किसान और ग्रामीण जनता उनकी बंधुआ है। टिकटों के लिए हुई लॉबिंग और दलबदल ने यह साबित कर दिया कि विचारधारा अब गौण है; सत्ता ही परम सत्य है। बीजेपी ने बहुत ही रणनीतिक तरीके से सहकारिता क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर प्रहार किया और मराठा समुदाय के भीतर भी एक नए नेतृत्व को खड़ा किया।

अजित पवार, जिनकी 28 जनवरी को एक विमान हादसे में मृत्यु हो गई, उन्हें कभी शरद पवार का स्वाभाविक उत्तराधिकारी और मराठा राजनीति का 'बाहुबली' माना जाता था, आज उनकी मृत्यु के बाद पार्टी

के भविष्य को लेकर धुंध छा गई है, हालांकि उनके पुत्र भी राजनीति में है तो क्या पार्टी की कमान नई पीढ़ी संभालेगी या फिर शरद पवार के गुट के साथ विलय होगा, यह तो समय बताएगा। दूसरी ओर शरद पवार अपने राजनीतिक जीवन की संध्या बेला में यह देखने को विवश हैं कि जिस साम्राज्य को उन्होंने 50 वर्षों में खड़ा किया था, वह उनकी आँखों के सामने ढह रहा है।

मातोश्री का सूनापन और मुंबई का नया मिजाज

मुंबई—सपनों का शहर, भारत की आर्थिक राजधानी और कभी बाल ठाकरे की हुंकार से थम जाने वाला महानगर। तीन दशकों तक बीएमसी पर ठाकरे परिवार का कब्जा था। 'मातोश्री' से निकला एक आदेश मुंबई की सड़कों के लिए कानून बन जाता था। लेकिन 2026 के चुनाव परिणामों ने सिद्ध कर दिया है कि मुंबईकर अब भावनात्मक ब्लैकमेलिंग से ऊब चुके हैं।

बीजेपी का बीएमसी पर कब्जा, भले ही एकनाथ शिंदे गुट की मदद से हुआ हो, लेकिन यह उद्धव ठाकरे के लिए एक अस्तित्वगत संकट है। धारा 36 के तहत महापौर की जिम्मेदारी केवल मासिक बैठक बुलाने तक सीमित है, लेकिन इसका प्रतीकात्मक महत्व बहुत बड़ा है। बीजेपी की रणनीति थी कि वह उद्धव ठाकरे और उनकी शिवसेना को उसी तरह खत्म कर देगी, जैसे उसने पश्चिम महाराष्ट्र में पवारों को किया। हालाँकि, उद्धव ने मराठी अस्मिता के कोर वोट बैंक को कुछ हद तक बचाए रखा, लेकिन सत्ता की चाबी अब उनके हाथ से फिसल चुकी है।

मुंबई की राजनीति अब भी अनिश्चितताओं के भंवर में है। शिंदे गुट, जो बीजेपी के साथ है, मलाईदार पदों के लिए सौदेबाजी कर रहा है। यह गठबंधन 'विचारधारा' का कम और 'लेन-देन' का ज्यादा है। फिर भी, यह सत्य अटल है कि मुंबई अब ठाकरे परिवार की निजी जागीर नहीं रही। समंदर की लहरों ने पुरानी वफादारियों की रेत को धो डाला है।

कांग्रेस का विलोपन और ओवैसी का उभारः

महाराष्ट्र, जो कभी कांग्रेस का अभेद्य दुर्ग था, आज वहां कांग्रेस पार्टी वेंटिलेटर पर है। 29 में से अधिकांश नगर निगमों में कांग्रेस तीसरे या चौथे नंबर की पार्टी बनकर रह गई है। उसकी जगह अब एक नई और आक्रामक शक्ति ने ले ली है—असदुद्दीन ओवैसी की एआईएमआईएम।

स्थानीय चुनावों में एआईएमआईएम द्वारा 121 सीटें जीतना, जिनमें मुंबई की 8 सीटें शामिल हैं, एक खतरे की घंटी है। यह दर्शाता है कि मुस्लिम मतदाता अब कांग्रेस और समाजवादी पार्टी के 'सॉफ्ट सेक्युलरिज्म' से मोहभंग कर चुके हैं। वे अब अपनी पहचान की राजनीति को मुखरता से रखने वाले ओवैसी में अपना भविष्य देख रहे हैं। यह ध्रुवीकरण बीजेपी के लिए राजनीतिक रूप से फायदेमंद हो सकता है, लेकिन सामाजिक ताने-बाने के लिए चिंताजनक है।

2029 का क्षितिज और निष्कर्ष

जनवरी 2026 में खड़े होकर जब हम महाराष्ट्र की इस नई राजनीतिक तस्वीर को देखते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य 'रीसेट मोड' में है। बीजेपी ने न केवल देश की आर्थिक राजधानी पर कब्जा किया है, बल्कि उत्तर प्रदेश के बाद देश के दूसरे सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक राज्य (48 लोकसभा सीटें) में अपनी जड़ें पाताल तक गहरी कर ली हैं।

यह जीत केवल नरेंद्र मोदी के करिश्मे की नहीं, बल्कि देवेंद्र फडणवीस के जमीनी प्रबंधन, संवैधानिक अंतरालों (जैसे प्रशासक राज) को भरने की रणनीति और विपक्ष के नैतिक पतन की भी कहानी है। यह चुनाव भले ही 'स्थानीय' कहे गए हों, लेकिन इनकी गूंज राष्ट्रीय है। इसने साबित कर दिया है कि स्थानीय निकाय, जो अक्सर राज्य सरकार की कठपुतली माने जाते हैं, राजनीतिक शक्ति प्रदर्शन का सबसे बड़ा अखाड़ा बन चुके हैं। आने वाले समय में महाराष्ट्र की राजनीति में और अधिक उथल-पुथल देखने को मिलेगी। सहकारिता क्षेत्र का पूरा ढांचा बदलेगा, शिक्षा और रोजगार के नए केंद्र बनेंगे, और मराठा आरक्षण जैसे मुद्दों की जगह 'विकासवादी हिंदुत्व' लेगा। 2029 के लोकसभा और विधानसभा चुनावों की बिसात अभी से बिछ चुकी है।

श्रीराजेश

डावोस की बर्फ़ीली पहाड़ियों में इस बार वैश्विक सहयोग नहीं, बल्कि शक्ति की नंगी परेड हो रही है। नियमों, संस्थाओं और नैतिकता की बातें अब केवल सजावटी आवरण हैं—असल खेल दबाव, दहशत और संसाधनों पर कब्ज़े का है। अमेरिका–यूरोप की दरारें, ग्रीनलैंड पर उभरता सैन्य लोभ, एल्गोरिदम के सहारे चलता डिजिटल साम्राज्यवाद और ग्लोबल साउथ की उबलती असहजता यह साफ़ कर देती है कि दुनिया किसी संक्रमण में नहीं, बल्कि एक नए दौर में प्रवेश कर चुकी है—नव-उपनिवेशवाद 2.0, जहां झंडे नहीं गाड़े जाते, भविष्य गिरवी रखे जाते हैं।

नव-उपनिवेशवाद 2.0

वैश्विक शक्ति संतुलन का विखंडन

डावोस की बर्फ़ीली पहाड़ियों में हर साल दुनिया के ताक़तवर लोग 'वैश्विक सहयोग' की भाषा बोलते हैं, लेकिन इस बार उस भाषा के पीछे छिपी नग्न शक्ति साफ़ दिखाई दी। मंच पर शांति, नियम और साझेदारी की बातें थीं, जबकि समानांतर रूप से दुनिया को यह संदेश भी दिया जा रहा था कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति फिर से ताक़त के व्याकरण में लौट रही है। यही वह क्षण था जब डावोस का मुखौटा उतरा—और यह स्वीकारोक्ति सामने आई कि दुनिया नियमों से नहीं, बल्कि डर और दबाव से चलाई जा रही है।

इसी मंच पर अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप का ग्रीनलैंड को लेकर दिया गया बयान इस बदलती विश्व-मानसिकता का सबसे सटीक प्रतीक बन गया। औपचारिक रूप से उन्होंने कहा कि वे 'कोई सैन्य बल इस्तेमाल नहीं करेंगे' और न ही यूरोप पर टैरिफ लगाएंगे, लेकिन उसी सांस में उन्होंने अमेरिकी बमवर्षकों, मिसाइल क्षमताओं और आर्कटिक में अमेरिकी सैन्य वर्चस्व की चर्चा कर दी। यह कोई कूटनीतिक असावधानी नहीं थी, बल्कि एक सुनियोजित प्रदर्शन था—एक ऐसा शक्ति-प्रदर्शन, जो शब्दों में नहीं, संकेतों में धमकी

देता है। डेनमार्क और पूरे यूरोप के लिए संदेश स्पष्ट था: सहमति न भी हो, तो अमेरिका के पास विकल्प मौजूद हैं।

यह वही मानसिकता है जिसने कभी औपनिवेशिक युग को जन्म दिया था। फर्क सिर्फ़ इतना है कि आज उपनिवेश झंडों और सेनाओं से नहीं, बल्कि रणनीतिक भूभाग, संसाधनों, टेक्नोलॉजी और सैन्य संकेतों के ज़रिये तय किए जा रहे हैं। ग्रीनलैंड पर ट्रंप की ज़िद दरअसल बर्फ़ की ज़मीन से अधिक उस सोच का विस्तार है, जिसमें भूगोल फिर से भाग्य लिखने लगा है और ताक़त, नैतिकता पर भारी पड़ रही है। डावोस में दिया गया यह बयान केवल ग्रीनलैंड के लिए नहीं था—यह पूरे यूरोप को उसकी रणनीतिक निर्भरता का आईना दिखाने जैसा था।

विडंबना देखिए कि वर्ष 1945 के बाद, जब हिरोशिमा और नागासाकी की राख से मानवता ने सबक लेने का दावा किया था, तब वाशिंगटन और लंदन ने एक ऐसी दुनिया का सपना गढ़ा था जहाँ राष्ट्रों का आचरण 'पाशविक शक्ति' से नहीं, बल्कि संस्थाओं और कानूनों से संचालित होगा। संयुक्त राष्ट्र, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और बाद में विश्व व्यापार संगठन—ये सभी उसी उदारवादी अंतरराष्ट्रीयवाद के स्तंभ थे। वादा किया गया था कि अब 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' नहीं चलेगी, बल्कि नियम-आधारित विश्व व्यवस्था होगी। लेकिन डावोस 2026 में यह भ्रम पूरी तरह टूटता दिखा।

वर्ष 2025–26 की दहलीज पर खड़ी दुनिया अब एक नितांत भिन्न, अधिक क्रूर और अस्थिर यथार्थ में प्रवेश कर चुकी है। इस यथार्थ का सबसे सजीव दृश्य स्विट्ज़रलैंड के डावोस में दिखाई देता है, जहाँ वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम के मंच से सतत विकास और समावेशी वृद्धि की बातें तो होती हैं, लेकिन वास्तविक चिंता रणनीतिक नियंत्रण, आपूर्ति शृंखलाओं की सुरक्षा और प्रभाव क्षेत्रों को लेकर है। बाहर आलप्स की बर्फ़ जमा देने वाली है, और भीतर कूटनीतिक रिश्तों में जमी बर्फ़ उससे कहीं ज़्यादा ठंडी और खतरनाक।

डावोस, जिसे कभी वैश्वीकरण और मुक्त व्यापार का मक्का कहा जाता था, आज अपने ही अस्तित्वगत संकट से जूझ रहा है। मंच पर 'वैश्विक सहयोग' के नारे हैं, लेकिन बंद कमरों में शक्ति-संतुलन, प्रतिशोध और गुटबंदी की भाषा बोली जा रही है। शैंपेन के गिलासों की खनक के बीच एक बेचैन सन्नाटा पसरा है। ट्रंप का ग्रीनलैंड पर दिया गया बयान इस सन्नाटे को चीरता हुआ यह याद दिलाता है कि आज की दुनिया में नियमों की दुहाई वही दे रहे हैं जिनकी शक्ति क्षीण हो रही है, जबकि प्रभुत्वशाली ताक़तें नियमों को केवल सुविधा अनुसार इस्तेमाल कर रही हैं।

आज डावोस किसी बेहतर भविष्य का उत्सव नहीं, बल्कि एक टूटती हुई वैश्विक व्यवस्था का शोकगीत बन चुका है—जहाँ मुस्कुराते चेहरों के पीछे छिपा डर यह कह रहा है कि दुनिया एक बार फिर उसी मोड़ पर खड़ी है, जहाँ ताक़त ही अंतिम तर्क हुआ करती है।

डोनाल्ड ट्रंप का दोबारा अमेरिकी राष्ट्रपति बनना और उनका आक्रामक, बिना लाग-लपेट वाला कार्यकाल, इस प्रक्रिया का कोई आकस्मिक परिणाम नहीं है। यह उस गहरे संरचनात्मक क्षरण का प्रतीक है जिसे विद्वान दशकों से 'पश्चिमी प्रभुत्व का अंत' और 'इतिहास की वापसी' कह रहे हैं। ट्रंप की 'अमेरिका प्रथम' नीति ने कूटनीति के उन रेशमी धागों को एक ही झटके में तोड़ दिया है, जिन्होंने दशकों से दुनिया को बांध रखा था। इसके स्थान पर 'लेन-देन आधारित अराजकता' का जन्म हुआ है। यह अराजकता केवल राजनीतिक अस्थिरता नहीं है; यह एक नए प्रकार के 'नव-उपनिवेशवाद 2.0' की प्रस्तावना है। जहां 19वीं सदी का उपनिवेशवाद भौगोलिक सीमाओं को रौंदता था, तोपों और जहाजों से संचालित होता था, वहीं 21वीं सदी का यह नया संस्करण 'डेटा', 'आपूर्ति शृंखला', 'तकनीकी एकाधिकार' और 'बर्फीले महाद्वीपों' के माध्यम से राष्ट्रों की संप्रभुता

का गला घोंट रहा है।

उदारवादी व्यवस्था का भ्रम, पाखंड और पतन

नियम-आधारित व्यवस्था का पतन समझने के लिए इसके उत्थान की पृष्ठभूमि और इसके अंतर्निहित विरोधाभासों को समझना आवश्यक है। शीत युद्ध के दौरान, अमेरिका ने एक 'उदारवादी वर्चस्व' का निर्माण किया। इसका तर्क सरल और मोहक था—यदि दुनिया के देश आपस में व्यापार करेंगे, एक-दूसरे के बाजारों पर निर्भर रहेंगे और एक साझा कानूनी ढांचे से बंधे होंगे, तो युद्ध की संभावना क्षीण हो जाएगी। यह 'लोकतांत्रिक शांति सिद्धांत' का व्यावहारिक अनुप्रयोग था, जिसने यह माना कि व्यापार करने वाले देश एक-दूसरे से लड़ते नहीं हैं।

हालांकि, यह व्यवस्था कभी भी उतनी 'समानतावादी' या 'न्यायपूर्ण' नहीं थी जितनी कि यह कागजों पर सुनहरी स्याही से लिखी गई थी। इसमें 'नियम' सबके लिए थे, लेकिन 'अपवाद' केवल अमेरिका और उसके यूरोपीय सहयोगियों के लिए सुरक्षित थे। 2003 का इराक युद्ध, जहां झूठे सबूतों के आधार पर एक संप्रभु राष्ट्र को नष्ट कर दिया गया, अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के प्रति अमेरिका का उपेक्षापूर्ण रवैया, और चयनात्मक मानवाधिकार हस्तक्षेपों ने इस व्यवस्था की नैतिक नींव को काफी पहले ही दीमक की तरह खोखला कर दिया था। शेष विश्व, जिसे अब हम 'ग्लोबल साउथ' कहते हैं, उसने यह महसूस करना शुरू कर दिया कि ये नियम दरअसल पश्चिमी वर्चस्व को शाश्वत बनाए रखने के चतुर उपकरण मात्र हैं।

1990 के दशक में वैश्वीकरण को एक 'परोपकारी शक्ति' के रूप में पेश किया गया। यह कहा गया कि 'उठती हुई लहरें सभी नावों को ऊपर उठाती हैं।' लेकिन 2008 के वैश्विक वित्तीय संकट ने यह सिद्ध कर दिया कि आर्थिक परस्पर निर्भरता एक दोधारी तलवार है। जब पश्चिमी बैंक डूबे, तो उसकी सजा पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं ने भुगती। जब व्यापारिक नियमों का उपयोग विकासशील देशों की नीतिगत स्वायत्तता को छीनने के लिए किया जाने लगा, तो 'नियम-आधारित व्यवस्था' के प्रति मोहभंग होना स्वाभाविक था। आज व्यापारिक संधियां 'विकास' का साधन कम और 'नियंत्रण' का औजार अधिक बन गई हैं। डावोस में आज जो अविश्वास दिख रहा है, वह इसी ऐतिहासिक धोखे का परिणाम है।

ट्रंपवाद और 'वैश्विक सहमति' का विध्वंस

यदि नियम आधारित विश्व व्यवस्था एक जर्जर इमारत थी, जिसकी दीवारों में दरारें पड़ चुकी थीं, तो डोनाल्ड ट्रंप वह बुलडोजर हैं जिसने इसकी नींव हिला दी है। ट्रंप की वैश्विक दृष्टि 'यथार्थवाद' के उस क्रूर संस्करण पर आधारित है जहां कोई स्थायी मित्र नहीं होता, केवल स्थायी हित होते हैं। उनकी नीतियों ने दुनिया को यह कड़वा सच याद दिला दिया है कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति 'प्रेम पत्र' लिखने की कला नहीं, बल्कि 'शक्ति प्रदर्शन' का अखाड़ा है।

अटलांटिक साझेदारी में बढ़ती दरारें दिखाती हैं कि सहयोग अब बोझ बन गया है। अमेरिका के दबाव से जूझता यूरोप, ग्रीनलैंड-आर्कटिक में संसाधन और सैन्य वर्चस्व की होड़ तथा डेटा-आधारित डिजिटल नव-उपनिवेशवाद—ये तीनों मिलकर बदलती वैश्विक शक्ति राजनीति की नई और खतरनाक तस्वीर पेश करते हैं।

ट्रंप ने नाटो जैसे पवित्र माने जाने वाले सुरक्षा गठबंधनों को एक 'व्यापारिक सौदे' की तरह पेश किया है। उनके लिए यूरोप या जापान की सुरक्षा अमेरिका का नैतिक उत्तरदायित्व नहीं, बल्कि एक 'सेवा' है जिसके लिए उन्हें भुगतान करना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे किसी सुरक्षा एजेंसी को पैसा दिया जाता है। यह नजरिया अंतरराष्ट्रीय संबंधों को 'संस्थागत सहयोग' के उच्च आसन से गिराकर 'भाड़े की सुरक्षा' के स्तर पर ले आता है। जब दुनिया की सबसे बड़ी शक्ति अपने गठबंधनों को 'सब्सिडी' और 'बोझ' कहने लगे, तो वैश्विक शक्ति संतुलन का चरमराना निश्चित है।

पेरिस जलवायु समझौते से बाहर निकलना, ईरान परमाणु सौदे को एकतरफा तोड़ना और विश्व व्यापार संगठन के अपीलीय निकाय को पंगु बनाना—ये ट्रंप के वे कदम हैं जिन्होंने यह स्पष्ट संदेश दिया कि अमेरिका अब उन नियमों को नहीं मानेगा जिन्हें उसने खुद बनाया था। यह 'अराजक विश्व व्यवस्था' की शुरुआत है। यह एक ऐसी दुनिया है जहां 'बहुपक्षवाद' मर चुका है और 'द्विपक्षीय दादागिरी' का बोलबाला है। जब 'अधिनायक' ही नियमों को तोड़ने लगे, तो दुनिया 'मत्स्यन्याय' यानी जंगल के कानून की ओर लौटने लगती है, जहां केवल वही सुरक्षित है जिसके पास नुकीले दांत और मजबूत जबड़े हैं। ट्रंप का संदेश स्पष्ट है: 'हम नियम नहीं बनाएंगे, हम परिणाम तय करेंगे।'

अटलांटिक में दरारें और यूरोप का अस्तित्वगत संकट

इस अराजकता का सबसे गहरा, सबसे वेदनापूर्ण प्रभाव अटलांटिक महासागर के दोनों किनारों पर महसूस किया जा रहा है। अमेरिका और यूरोप के बीच की वह साझेदारी, जिसे कभी 'पश्चिमी सभ्यता का आधारस्तंभ' और लोकतंत्र का प्रहरी माना जाता था, आज अविश्वास के गहरे समुद्र में डूब रही है।

डावोस के गलियारों में यूरोपीय राजनयिकों के चेहरों पर एक अजीब सी बेचैनी और हताशा पढ़ी जा सकती है। दशकों तक यूरोप अमेरिका की सुरक्षा छतरी के नीचे निश्चिंत होकर सोता रहा, अपनी सेनाओं को छोटा करता रहा, अपनी अर्थव्यवस्था को बढ़ाता रहा और अपने नागरिकों को 'कल्याणकारी राज्य' का आनंद देता रहा। लेकिन अब ट्रंप के अमेरिका ने उस छतरी को हटा लेने की धमकी दे दी है। यूरोप को यह कठोर संदेश दिया जा रहा है कि उसे अपनी सुरक्षा का खर्च खुद उठाना होगा। यह यूरोप के लिए केवल आर्थिक झटका नहीं, बल्कि एक मनोवैज्ञानिक आघात है, जिसने उसकी पूरी पहचान को संकट में डाल दिया है।

यूरोप को लगता है कि यूक्रेन युद्ध और रूस विरोधी प्रतिबंधों का सबसे भारी आर्थिक बोझ उसने उठाया है। उसकी सस्ती ऊर्जा की आपूर्ति बंद हो गई, उसके उद्योग बंद हो रहे हैं, और महंगाई आसमान छू रही है। दूसरी ओर, अमेरिका अपनी ऊर्जा (एलएनजी) और हथियारों को ऊंचे दामों पर बेचकर मुनाफा कमा रहा है और साथ ही 'मुद्रास्फीति न्यूनीकरण अधिनियम' के जरिए यूरोपीय उद्योगों को अमेरिका खींच रहा है। यह 'मित्रता' अब यूरोप को 'शोषण' जैसी प्रतीत होने लगी है। डावोस में अमेरिकी प्रतिनिधियों का रवैया स्पष्ट करता है कि उनके लिए यूरोप अब 'समान भागीदार' नहीं, बल्कि एक 'कनिष्ठ सहयोगी' है जिसे वाशिंगटन के आदेशों का पालन करना चाहिए, चाहे उससे उसका कितना ही नुकसान क्यों न हो।

यही कारण है कि यूरोप, अपनी तमाम हिचकिचाहट और आंतरिक मतभेदों के बावजूद, अब चीन की ओर एक उम्मीद भरी नजर से देख रहा है। यह यूरोप का वैचारिक हृदय परिवर्तन नहीं, बल्कि उसकी 'रणनीतिक विवशता' है। जर्मन उद्योगपति और फ्रांसीसी रणनीतिकार यह समझ चुके हैं कि वे अमेरिका और चीन के बीच के इस महायुद्ध में केवल 'मोहरा' नहीं बन सकते। चीन के साथ 'जोखिम न्यूनीकरण' की बात करते हुए भी यूरोप व्यापार के दरवाजे खुले रखना चाहता है। यह उसी प्रकार की स्थिति है जैसे डूबता हुआ व्यक्ति तिनके का सहारा ढूंढता है—भले ही वह तिनका उसका प्रतिद्वंद्वी ही क्यों न हो। यूरोप आज एक ऐसे चौराहे पर खड़ा है, जहां एक रास्ता अमेरिकी अधीनता की ओर जाता है और दूसरा अनिश्चितता के अंधेरे की ओर।

नया कुरुक्षेत्र और संसाधन राष्ट्रवाद

यदि नव-उपनिवेशवाद का एक चेहरा वाशिंगटन और ब्रुसेल्स के बीच की तनातनी है, तो उसका दूसरा और अधिक भयावह चेहरा बर्फीले उत्तर में, विशेषकर ग्रीनलैंड और आर्कटिक क्षेत्र में दिखाई दे रहा है।

इतिहास गवाह है कि साम्राज्यों की भूख कभी मिटती नहीं; वह केवल अपना भोजन बदलती है। 2019 में जब डोनाल्ड ट्रंप ने ग्रीनलैंड को 'खरीदने' का प्रस्ताव रखा था, तो वैश्विक मीडिया ने इसे एक रीयल-एस्टेट मुगल का मजाक समझकर उड़ा दिया था। लेकिन सामरिक दृष्टि रखने वालों के लिए यह एक गंभीर खतरे की घंटी थी। यह प्रस्ताव 21वीं सदी में 19वीं सदी की उस औपनिवेशिक मानसिकता की वापसी थी, जो भूगोल को राष्ट्र, संस्कृति या लोगों का घर नहीं, बल्कि केवल एक 'परिसंपत्ति' मानती है जिसका सौदा किया जा सकता है।

ग्रीनलैंड और आर्कटिक क्षेत्र आज महाशक्तियों के लिए 'भविष्य का खजाना' बन गए हैं। जलवायु परिवर्तन, जिसे दुनिया के लिए संकट माना जाता है, महाशक्तियों के लिए एक 'अवसर' बनकर उभरा है। पिघलती बर्फ ने न केवल नए समुद्री मार्ग (जो एशिया और यूरोप की दूरी कम कर देंगे) खोल दिए हैं, बल्कि बर्फ की सफेद चादर के नीचे दबे यूरेनियम, दुर्लभ खनिजों (जो चिप्स और बैटरियों के लिए अनिवार्य हैं), तेल और प्राकृतिक गैस के असीमित भंडारों को भी उजागर कर दिया है। अमेरिका और यूरोप के बीच ग्रीनलैंड को लेकर चल रही कूटनीतिक खींचतान ने यह सिद्ध कर दिया है कि 'पर्यावरण संरक्षण' के नारे अक्सर 'संसाधन नियंत्रण' की मंशा को छिपाने के लिए लगाए जाते हैं।

ग्रीनलैंड की भौगोलिक स्थिति उसे आर्कटिक का प्रहरी बनाती है।

अमेरिका इसे रूस और चीन के खिलाफ अपने 'अभेद्य विमानवाहक पोत' के रूप में देखता है। वहीं, डेनमार्क और यूरोपीय संघ इसे अपनी संप्रभुता का हिस्सा मानते हैं, लेकिन उनके पास इसकी सुरक्षा करने की क्षमता सीमित है। यह खींचतान केवल एक द्वीप के लिए नहीं है; यह इस बात का निर्धारण करने के लिए है कि भविष्य की ऊर्जा और सामरिक मार्गों पर किसका नियंत्रण होगा।

आर्कटिक काउंसिल, जो कभी शांतिपूर्ण वैज्ञानिक सहयोग का मंच था, अब बिखर चुका है। रूस अपने उत्तरी तटों का आक्रामक सैन्यीकरण कर रहा है, नए अड्डे बना रहा है। चीन, जिसका आर्कटिक से कोई सीधा सीमा संपर्क नहीं है, खुद को 'निकट-आर्कटिक राज्य' घोषित कर रहा है और वहां 'पोलर सिल्क रोड' बनाने की महत्वाकांक्षा रखता है। जवाब में अमेरिका ग्रीनलैंड पर अपना प्रभाव जमा रहा है। यह 'आर्कटिक के लिए होड़' बिल्कुल वैसी ही है जैसा 19वीं सदी में अफ्रीका के लिए हुआ था—एक ऐसा 'अस्वामित क्षेत्र' जिसे ताकतवर भेड़िए आपस में बांट लेना चाहते हैं। यहां संप्रभुता का अर्थ 'ध्वज फहराना' नहीं, बल्कि संसाधनों को खोद निकालना है।

कनाडा, जो अमेरिका का पड़ोसी और सहयोगी है, इस खेल में एक मूक दर्शक और कुछ हद तक पीड़ित की भूमिका में है। उसकी स्थिति उस छोटे भाई जैसी है जो बड़े भाई की दादागिरी से असहज तो है, लेकिन विरोध करने की स्थिति में नहीं। कनाडा की यह चुप्पी और भय, डावोस की वातानुकूलित चर्चाओं के बीच, छोटे और मध्यम राष्ट्रों की विवशता का प्रतीक है, जो यह देख रहे हैं कि उनके पिछवाड़े में महाशक्तियां शतरंज की बिसात बिछा रही हैं।

डिजिटल साम्राज्यवाद

अब दृष्टि को भूगोल के नक्शे से हटाकर उस दुनिया की ओर ले चलते हैं जो अदृश्य है, लेकिन सर्वव्यापी है—डिजिटल दुनिया। आज की शब्दावली में जिसे 'तकनीकी-सामंतवाद' कहा जा रहा है, वह वास्तव में नव-उपनिवेशवाद का डिजिटल चेहरा है। यह उपनिवेशवाद का सबसे खतरनाक रूप है क्योंकि यह जमीन पर कब्जा नहीं करता, बल्कि दिमागों पर कब्जा करता है।

18वीं सदी में ईस्ट इंडिया कंपनी ने व्यापार के बहाने प्रशासनिक नियंत्रण हासिल किया था। 21वीं सदी में सिलिकॉन वैली की दिग्गज तकनीकी कंपनियां (अमेजन, गूगल, मेटा, माइक्रोसॉफ्ट) और चीन की तकनीकी दिग्गज कंपनियां—यही भूमिका निभा रही हैं। औपनिवेशिक काल में अफ्रीका और एशिया से कच्चा माल (कपास, मसाले, खनिज) लूटा जाता था और उन्हें महंगे उत्पाद बेचे जाते थे; आज 'डेटा' वह नया सोना है जिसे लूटा जा रहा है।

विकासशील देशों के नागरिकों का डेटा—उनकी पसंद, उनकी राजनीतिक विचारधारा, उनका वित्तीय व्यवहार, उनके बायोमेट्रिक्स, उनके डर और उनकी इच्छाएं—मुक्त रूप से इन वैश्विक कंपनियों द्वारा संकलित किया जाता है। इस डेटा को सुदूर कैलिफोर्निया या शंघाई में स्थित सर्वरों में 'परिष्कृत' किया जाता है। फिर कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) के माध्यम से इसी डेटा का उपयोग करके उन्हीं देशों के नागरिकों के व्यवहार को नियंत्रित, प्रभावित और निर्देशित किया जाता है। यह 'डेटा निष्कर्षण' की वह प्रक्रिया है जो राष्ट्रों को उनकी सबसे मूल्यवान संपत्ति—उनके नागरिकों की निजता और स्वतंत्र सोच—से वंचित कर रही है।

जब किसी देश की सूचना प्रणाली, न्याय प्रणाली या वित्तीय लेनदेन का आधार विदेशी एल्गोरिदम बन जाता है, तो उस देश की संप्रभुता केवल नाममात्र की रह जाती है, जैसे कोई कठपुतली। आज एल्गोरिदम ही यह तय करते हैं कि किसी समाज में क्या चर्चा होगी, कौन सा विमर्श सफल होगा, कौन सा झूठ सच बनेगा और कौन सा नेता चुनाव जीतेगा। यह 'मृदु शक्ति' का चरम और विकृत रूप है, जहां एक विदेशी शक्ति बिना एक भी गोली चलाए किसी समाज के मानसिक और सामाजिक ढांचे को पुनर्गठित कर सकती है। यदि कोई देश इन तकनीकी कंपनियों के विरुद्ध नियामक कार्रवाई करने का प्रयास करता है (जैसे कर लगाना या डेटा स्थानीयकरण), तो उसे 'तकनीकी अलगाव' और निवेश वापस लेने की धमकी दी जाती है। यह आधुनिक 'तोप-आधारित कूटनीति' है, जो बारूद से नहीं बल्कि

ग्रीनलैंड: एआई तस्वीरों में छिपी ट्रंप की 'डोनरो डॉक्ट्रिन'

हाल ही में राष्ट्रपति ट्रंप ने अपने सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म 'ट्रूथ' पर एक एआई-जनित तस्वीर साझा कर भू-राजनीतिक भूचाल ला दिया। इस तस्वीर में ट्रंप, विदेश मंत्री मार्को रूबियो और उपराष्ट्रपति जेडी वैंस के साथ ऐतिहासिक 'इवो जिमा' की तर्ज पर ग्रीनलैंड की बर्फीली धरती पर अमेरिकी झंडा गाड़ते दिख रहे हैं। इतना ही नहीं, एक अन्य साझा की गई तस्वीर में कनाडा को भी अमेरिकी क्षेत्र के रूप में चित्रित किया गया है।

यह केवल सोशल मीडिया की शरारत नहीं, बल्कि ट्रंप की आक्रामक 'डोनरो डॉक्ट्रिन' का उद्घोष है। ग्रीनलैंड को 'यूरोपीय कमांड' से हटाकर अमेरिकी 'नॉर्थकोम' के अधीन करना और 'मेक ग्रीनलैंड ग्रेट अगेन' एक्ट के जरिए वहां के नागरिकों को डेनमार्क से अलग होने के लिए वित्तीय प्रस्ताव देना, यह दर्शाता है कि अमेरिका दुर्लभ खनिजों और अपनी प्रस्तावित 'गोल्डन डोम' रक्षा परियोजना के लिए किसी भी हद तक जा सकता है। डेनमार्क और नाटो सहयोगियों की नाराजगी के बावजूद, ट्रंप का संदेश स्पष्ट है—ग्रीनलैंड अब यूरोप का हिस्सा नहीं, बल्कि अमेरिकी सुरक्षा कवच का अनिवार्य अंग है।

'डिजिटल अंधकार' और 'सेवाओं के निलंबन' से संचालित होती है।

तकनीकी रंगभेद और आपूर्ति श्रृंखलाओं का शस्त्रीकरण

नव-उपनिवेशवाद 2.0 का एक और घातक पक्ष 'तकनीकी रंगभेद' है। महाशक्तियां—विशेष रूप से अमेरिका और चीन—अब ऐसी उन्नत तकनीकों (जैसे क्वांटम कंप्यूटिंग, 6जी, उन्नत सेमीकंडक्टर, जैव-प्रौद्योगिकी और एआई चिप्स) पर एकाधिकार कर रही हैं, जिन्हें वे शेष विश्व के साथ साझा नहीं करना चाहतीं। वे एक ऊंची दीवार खड़ी कर रहे हैं जिसके भीतर भविष्य की तकनीक है और बाहर केवल उपभोक्ता।

पहले व्यापारिक मार्ग और आपूर्ति श्रृंखलाएं केवल आर्थिक दक्षता और कम लागत के लिए बनाई जाती थीं, लेकिन अब वे 'रणनीतिक हथियार' बन चुकी हैं। डोनाल्ड ट्रंप की टैरिफ नीतियां और 'डी-कपलिंग' का दर्शन इसी रणनीति का हिस्सा है। जब दुनिया की आपूर्ति श्रृंखलाएं खंडित होती हैं, तो मध्यम और छोटे राष्ट्रों को किसी एक 'तकनीकी खेमे' का हिस्सा बनने के लिए मजबूर किया जाता है। यह राष्ट्रों की 'रणनीतिक स्वायत्तता' पर सीधा प्रहार है।

उदाहरण के लिए, सेमीकंडक्टर चिप्स, जो आधुनिक अर्थव्यवस्था का तेल हैं, अब नियंत्रण का मुख्य केंद्र हैं। यदि आप वाशिंगटन के पाले में नहीं हैं, तो आपको अत्याधुनिक एआई चिप्स नहीं मिलेंगे, जिससे आपका तकनीकी विकास रुक जाएगा; यदि आप बीजिंग के पाले में नहीं हैं, तो आपको हरित ऊर्जा के लिए सोलर पैनल और बैटरियां नहीं मिलेंगी। यह द्वैध शासन नव-उपनिवेशवाद का वह जाल है जिसमें राष्ट्र अपनी चुनने की स्वतंत्रता खो रहे हैं। यह 'चिप साम्राज्यवाद' है, जो तय करता है कि कौन सा देश भविष्य की दौड़ में दौड़ेगा और कौन सा केवल दर्शक दीर्घा में बैठकर तालियां बजाएगा।

राज्य का क्षरण और निजी संप्रभुता का उदय

नव-उपनिवेशवाद 2.0 की सबसे विचलित करने वाली और ऐतिहासिक रूप से अभूतपूर्व विशेषता यह है कि अब 'राज्य' (स्टेट) की शक्ति का एकाधिकार निजी हाथों में जा रहा है। 1648 की वेस्टफेलियन संधि ने जिस संप्रभु राज्य की अवधारणा को जन्म दिया था, वह अब 'कॉर्पोरेट संप्रभुता' के सामने घुटने टेक रही है।

इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण एलोन मस्क और उनकी स्टारलिंक सेवा है। जब एक अकेला व्यक्ति यह निर्णय लेने की क्षमता रखता है कि यूक्रेन युद्ध में किस क्षेत्र में इंटरनेट सेवाएं सक्रिय रहेंगी और कहां बंद कर दी जाएंगी, तो वह एक 'स्वतंत्र संप्रभु' की तरह व्यवहार कर रहा होता है। यह किसी भी निर्वाचित सरकार की शक्ति से बड़ा और भयानक हस्तक्षेप है। अतीत में राजा युद्ध का निर्णय लेते थे, आज एक तकनीकी सीईओ यह तय कर सकता है कि ड्रोन उड़ेंगे या नहीं।

स्टारलिंक या अन्य उपग्रह प्रणालियां आज केवल संचार सेवाएं नहीं हैं; ये भू-राजनीतिक उपकरण हैं। मस्क जैसे 'तकनीकी-कुलीन' अब वैश्विक कूटनीति में कई देशों के राष्ट्रध्यक्षों से अधिक प्रभावशाली

हो गए हैं। यह 'निजी उपनिवेशवाद' का वह युग है जहां देश अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा, आपदा प्रबंधन और संचार के लिए किसी निजी कंपनी के 'नियमों और शर्तों' के मोहताज हैं। यदि इन निजी कुबेरों का हित किसी शत्रु देश के साथ मेल खाता है, तो वे एक संप्रभु राष्ट्र की रक्षात्मक क्षमता को पल भर में पंगु बना सकते हैं।

इसी प्रकार, युद्ध का निजीकरण भी हो रहा है। चाहे रूस का वैगनर ग्रुप (अब परिवर्तित रूप में) हो या पश्चिमी देशों की निजी सैन्य कंपनियां, ये अब राज्यों के लिए 'प्रॉक्सी' का काम कर रही हैं। अफ्रीका के कई देशों में सोने और हीरे की खदानों की सुरक्षा अब इन निजी सेनाओं के हाथों में है, जो स्थानीय सरकारों के समानांतर अपनी सत्ता चलाती हैं। यह 'कॉर्पोरेट जागीरदारी' का आधुनिक रूप है, जहां वफादारी राष्ट्र के प्रति नहीं, बल्कि पे-चेक के प्रति होती है।

शोषण के नए मुखौटे

नव-उपनिवेशवाद का आर्थिक पहलू भी उतना ही विकृत है। एक ओर चीन का मॉडल है, जिसे अक्सर 'ऋण-जाल कूटनीति' कहा जाता है। इसमें गरीब देशों को अवसंरचना के नाम पर इतना कर्ज दिया जाता है जिसे वे चुका न सकें, और अंततः उन्हें अपनी रणनीतिक संपत्तियां (बंदरगाह, खदानें) गिरवी रखनी पड़ती हैं। यह श्रीलंका से लेकर जाम्बिया तक देखा गया है।

दूसरी ओर, पश्चिमी संस्थाएं (आईएमएफ, विश्व बैंक) हैं, जो ऋण तो देती हैं लेकिन उनके साथ कठोर शर्तें जुड़ी होती हैं—जैसे सरकारी खर्च कम करना, सब्सिडी हटाना और बाजारों को पश्चिमी कंपनियों के लिए खोलना। यह भी एक प्रकार का नियंत्रण है जो देशों को गरीबी के दुष्चक्र में फंसाए रखता है।

इसके साथ ही, 'हरित उपनिवेशवाद' का उदय हो रहा है। पश्चिमी देश, जिन्होंने दो सदियों तक कोयला जलाकर अपना विकास किया, अब विकासशील देशों पर कड़े पर्यावरणीय मानक थोप रहे हैं। वे कांगो और लैटिन अमेरिका से कोबाल्ट और लिथियम (जो इलेक्ट्रिक वाहनों के लिए चाहिए) तो सस्ती दरों पर चाहते हैं, लेकिन उन देशों को उन्हीं संसाधनों का उपयोग करके अपना औद्योगीकरण करने से रोकते हैं। यह पर्यावरण की रक्षा के नाम पर किया जाने वाला आर्थिक दमन है। डावोस में जब जलवायु परिवर्तन पर चर्चा होती है, तो यह विरोधाभास साफ दिखता है—निजी जेट से आने वाले अरबपति उन देशों को उपदेश देते हैं जिनके पास बिजली तक नहीं है।

ग्लोबल साउथ का प्रतिरोध और भारत: एक वैकल्पिक ध्रुव

जब हम 'नियम-आधारित विश्व व्यवस्था' के ढहने और नव-उपनिवेशवाद के उदय की चर्चा करते हैं, तो अक्सर हमारा ध्यान पश्चिम की ओर होता है। किंतु इस ऐतिहासिक मंथन का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय 'ग्लोबल साउथ' में लिखा जा रहा है। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के वे राष्ट्र, जो सदियों तक पुराने उपनिवेशवाद के शिकार रहे, अब इस नए जाल को पहचानने लगे हैं।

कोविड-19 महामारी के दौरान 'वैक्सीन रंगभेद' (जब पश्चिम ने टीकों का भंडारण किया) और जलवायु परिवर्तन के नाम पर थोपे जा रहे अनुचित प्रतिबंधों ने ग्लोबल साउथ की आंखों से पश्चिमी नैतिकता का पर्दा हमेशा के लिए हटा दिया है। वे देख रहे हैं कि एक तरफ चीन का 'चेकबुक साम्राज्यवाद' है, और दूसरी तरफ पश्चिम का 'संरक्षणवादी यथार्थवाद' है। इन दोनों के बीच फंसने के बजाय, वे अब अपनी आवाज उठा रहे हैं।

इस वैश्विक अंधकार और अराजकता के मध्य, भारत एक 'प्रकाशस्तंभ' की तरह उभर रहा है। भारत की स्थिति अद्वितीय है—वह न तो पश्चिम का पिछलग्गू है और न ही चीन का आश्रित राज्य। भारत ने अपनी विदेश नीति को किसी एक खेमे में बांधने से साफ इनकार कर दिया है। डावोस में भारत की उपस्थिति एक याचक की नहीं, बल्कि एक समाधान प्रदाता और 'विश्वमित्र' की है।

भारत, ग्लोबल साउथ के लिए एक 'वैकल्पिक मॉडल' पेश कर रहा है जो शोषण पर नहीं, सशक्तिकरण पर आधारित है:

1. **डिजिटल स्वायत्तता:** जहां अमेरिका और चीन डेटा को नियंत्रित और एकाधिकारवादी बनाना चाहते हैं, भारत ने 'डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना' (जैसे यूपीआई, आधार, ओएनडीसी) का एक लोकतांत्रिक मॉडल दुनिया को दिया है। यह मॉडल 'मुक्त-स्रोत' (ओपन-सोर्स) है और डेटा की प्रभुता को नागरिकों और राष्ट्र के पास रखता है, न कि सिलिकॉन वैली या बीजिंग के सर्वरों में। यह 'डिजिटल वि-उपनिवेशीकरण' की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है, जिसे अब कई देश अपना रहे हैं।
2. **बहुध्रुवीयता का संतुलन:** भारत ने जी-20 की अध्यक्षता के दौरान 'अफ्रीकी संघ' को स्थायी सदस्यता दिलाकर यह सिद्ध किया कि वह वैश्विक शासन का लोकतंत्रीकरण चाहता है। भारत की 'गुटनिरपेक्षता 2.0' निष्क्रियता की नहीं, बल्कि 'रणनीतिक स्वायत्तता' और 'विश्वबंधुत्व' की सक्रिय नीति है।
3. **मूल्य-आधारित यथार्थवाद:** रूस-यूक्रेन संघर्ष हो या पश्चिम एशिया का तनाव, भारत ने शांति और कूटनीति की वकालत करते हुए भी अपने ऊर्जा हितों और सुरक्षा से समझौता नहीं किया। भारत ने दिखाया है कि राष्ट्रीय हित और वैश्विक नैतिकता के बीच संतुलन कैसे बनाया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन और जैव-ईंधन गठबंधन जैसी पहलें भारत के रचनात्मक नेतृत्व का प्रमाण हैं।

प्रज्ञा की विजय या शक्ति का तांडव?

डोनाल्ड ट्रंप का 'अराजक यथार्थवाद' दुनिया के लिए एक कड़वी दवा की तरह है, जिसने उस 'उदारवादी सुरक्षा कवच' को उतार फेंका है जिसके पीछे महाशक्तियां अपने हित साध रही थीं। ट्रंप ने दुनिया को यह अहसास करा दिया है कि अब कोई 'वैश्विक पुलिसकर्मी' नहीं है जो आपकी रक्षा करेगा। अब हर राष्ट्र को अपनी सुरक्षा का दायित्व स्वयं उठाना होगा।

डावोस की पहाड़ियों से लेकर ग्रीनलैंड के ग्लेशियरों तक, और सिलिकॉन वैली के बोर्डरूम से लेकर अफ्रीकी खदानों तक—संदेश स्पष्ट है: संप्रभुता अब अधिकार नहीं, बल्कि एक अर्जित शक्ति है। यह वह दुनिया है जहां कमजोरों की कोई सुनवाई नहीं है, जब तक कि वे एकजुट न हों।

आज संप्रभु होने का अर्थ बदल गया है। वेस्टफेलियन संप्रभुता (सीमाओं की सुरक्षा) अब पर्याप्त नहीं है। आज एक राष्ट्र को संप्रभु रहने के लिए 'त्रि-आयामी सुरक्षा' की आवश्यकता है:

1. **डिजिटल संप्रभुता:** अपने डेटा, नेटवर्क और एल्गोरिदम पर पूर्ण नियंत्रण।
2. **संसाधन संप्रभुता:** अपनी आपूर्ति श्रृंखलाओं, खनिजों और ऊर्जा स्रोतों की सुरक्षा।
3. **बौद्धिक संप्रभुता:** अपने विकास का मॉडल स्वयं तय करने का साहस और अपनी संस्कृति को विदेशी नैरेटिव से बचाने की क्षमता।

नव-उपनिवेशवाद 2.0 का यह दौर मानवता के धैर्य, विवेक और 'प्रज्ञा' की परीक्षा है। यदि राष्ट्रों ने केवल शक्ति का पीछा किया, तो वे किसी न किसी साम्राज्य के उपग्रह बनकर रह जाएंगे। हम फिर से गुटों में बंटी हुई दुनिया देखेंगे जो तीसरे विश्व युद्ध की ओर बढ़ सकती है। किंतु यदि दुनिया ने भारत द्वारा प्रस्तावित सहयोग, समावेशिता, सुधारवादी बहुपक्षवाद और रणनीतिक स्वायत्तता के मार्ग को अपनाया, तो शायद हम इस अराजकता के गर्भ से एक नई, न्यायपूर्ण और संतुलित विश्व व्यवस्था को जन्म दे सकें।

इतिहास की कलम अभी रुकी नहीं है; वह एक नए अध्याय की भूमिका लिख रही है। प्रश्न यह है कि क्या हम उस अध्याय को 'संघर्ष' और 'वर्चस्व' की स्याही से लिखेंगे या 'सहयोग' और 'सह-अस्तित्व' की? जंजीरें अब लोहे की नहीं, डेटा और निर्भरता की हैं, और उन्हें तोड़ने के लिए हथौड़े की नहीं, बल्कि दूरदृष्टि और सामूहिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। डावोस की पिघलती बर्फ शायद यही चेतावनी दे रही है कि यदि हमने समय रहते अपने तौर-तरीके नहीं बदले, तो हम एक ऐसे शीत युद्ध में प्रवेश कर जाएंगे जो पिछली सदी से कहीं अधिक ठंडा और विनाशकारी होगा।

ट्रंप का अमेरिका
सुपर पावर से सुपर रिस्क
सिस्टम मेकर से सिस्टम ब्रेकर तक की यात्रा

संजय श्रीवास्तव
राष्ट्रीय संपादक,
कल्ट करंट

डोनाल्ड ट्रंप के दौर में अमेरिका अब वह देश नहीं रहा जो दुनिया को स्थिरता, नियम और दिशा देता था। वह एक ऐसे शक्ति-केंद्र में बदलता जा रहा है जो अनिश्चितता, भय और जोखिम का निर्यात करता है। यह कोई वैचारिक आरोप नहीं, बल्कि आज का वैश्विक अनुभव है। अंतरराष्ट्रीय राजनीति में सबसे बड़ा अस्थिर तत्व अब कोई विद्रोही राष्ट्र नहीं, बल्कि स्वयं अमेरिका—और उसका नेतृत्व—बन चुका है।

डोनाल्ड ट्रंप के शासनकाल में अमेरिका की पहचान एक सिस्टम मेकर से बदलकर सिस्टम ब्रेकर की हो गई है। जिन वैश्विक संस्थाओं के सहारे उसने दशकों तक नैतिक नेतृत्व का दावा किया—संयुक्त राष्ट्र, विश्व व्यापार संगठन और नाटो—आज वही संस्थाएँ उसे बोझ लगती हैं। नियम अब साझा अनुशासन नहीं, बल्कि दूसरों पर थोपे जाने वाले औज़ार हैं; और जब वही नियम अमेरिका पर लागू होने की बात आती है, तो वे 'अवरोध' घोषित कर दिए जाते हैं।

ट्रंप के अमेरिका में कूटनीति का अर्थ संवाद नहीं, बल्कि धमकी का प्रबंधन है। मित्र देशों को सुरक्षा की गारंटी नहीं, बल्कि बिल थमाया जाता है। सहयोग नैतिक जिम्मेदारी नहीं, बल्कि सौदेबाज़ी बन चुका है। यही कारण है कि आज यूरोप आशंकित है, एशिया असहज है और ग्लोबल साउथ अविश्वासी। पूरी दुनिया एक ऐसे नेतृत्व से जूझ रही है जो स्थिरता पैदा नहीं करता, बल्कि संकटों को सामान्य बना देता है।

अमेरिका अब युद्ध रोकने वाली शक्ति नहीं, बल्कि टकराव को नॉर्मलाइज़ करने वाला देश बनता जा रहा है। टैरिफ, प्रतिबंध, सैन्य संकेत और आक्रामक बयानबाज़ी—ये सब उस राजनीति के औज़ार हैं जो दुनिया को संतुलन नहीं, बल्कि लगातार तनाव की अवस्था में रखना चाहती है। यहीं 'सुपर पावर' की छवि टूटती है और 'सुपर रिस्क' का चेहरा सामने आता है।

इस पृष्ठभूमि में यह प्रश्न अनिवार्य है—क्या दुनिया किसी वैकल्पिक दिशा की तलाश कर सकती है? और यदि हाँ, तो वह दिशा कौन दे सकता है?

यहीं से भारत का प्रश्न केवल राष्ट्रीय नहीं, बल्कि वैश्विक महत्व का बन जाता है। भारत आज किसी साम्राज्यवादी दावे के साथ खड़ा नहीं है। वह न अमेरिकी वर्चस्व का पिछलग्गू है, न किसी नए ध्रुव का आक्रामक दावेदार। उसकी सबसे बड़ी शक्ति है—रणनीतिक संयम।

जहाँ ट्रंप का अमेरिका संस्थाओं को तोड़ने और नियमों को हथियार बनाने में विश्वास करता है, वहीं भारत उन्हें सुधारने, लोकतांत्रिक बनाने और बहुध्रुवीय करने की बात करता है। जहाँ अमेरिका धमकी देता है, भारत संवाद करता है। जहाँ अमेरिका गुट बनाता है, भारत पुल बनाता है। और जहाँ अमेरिका अनिश्चितता फैलाता है, भारत पूर्वानुमेयता देता है।

भारत की विदेश नीति की धुरी स्पष्ट है—रणनीतिक स्वायत्तता। यह न निष्क्रिय गुटनिरपेक्षता है, न अवसरवादी संतुलन। रूस-यूक्रेन संघर्ष हो या पश्चिम एशिया का संकट, भारत ने दिखाया है कि राष्ट्रीय हित और वैश्विक नैतिकता एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि संतुलन के सहयात्री हो सकते हैं।

डिजिटल क्षेत्र में भारत का डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना मॉडल—न डेटा का निजी एकाधिकार, न सर्वग्रासी निगरानी—बल्कि नागरिक-केंद्रित डिजिटल संप्रभुता पर आधारित है। इसलिए आज ग्लोबल साउथ भारत को केवल एक बाज़ार नहीं, बल्कि एक मॉडल के रूप में देख रहा है।

इसलिए प्रश्न 'माइनस अमेरिका' का नहीं, बल्कि माइनस अमेरिकी एकाधिकार का है। आज यदि अमेरिका 'सुपर रिस्क' है, तो भारत उस जोखिम के बीच संतुलन की संभावना है। इतिहास शायद यही देख रहा है—कौन अराजकता को बढ़ाता है, और कौन उसे दिशा देता है।●

डोनाल्ड ट्रंप के दौर में अमेरिका स्थिरता नहीं, अनिश्चितता का स्रोत बनता जा रहा है। ऐसे समय भारत संतुलन, संवाद और बहुध्रुवीय दिशा की संभावना पेश करता है।

अब किसकी बारी ?

वेनेजुएला में अपेक्षाकृत आसान और कम-प्रतिक्रिया वाली कार्रवाई ने ट्रंप प्रशासन को यह विश्वास दिलाया है कि एकतरफा सैन्य कदमों की अंतरराष्ट्रीय लागत सीमित है। रूस और चीन की बयानबाजी, भारत- यूरोप की चुप्पी और संयुक्त राष्ट्र की निष्क्रियता ने इस आत्मविश्वास को और मजबूत किया है। नतीजतन, ट्रंप की धमकियों को अब शेखी नहीं, बल्कि आगामी कार्रवाइयों की प्रस्तावना के रूप में देखा जाएगा। वेनेजुएला केवल शुरुआत है। ट्रंप का अमेरिका अब संयम नहीं, बल्कि दबदबे को अपनी विदेश नीति का आधार बना चुका है—और यही दुनिया के लिए सबसे बड़ा खतरा है। ट्रंप का अगला निशाना इनपर हो सकता हैः-

कोलंबिया

ड्रग्स के बहाने सत्ता परिवर्तन की तैयारी

कोलंबिया को लेकर ट्रंप की भाषा असाधारण रूप से आक्रामक है। राष्ट्रपति गुस्तावो पेट्रो को सार्वजनिक रूप से 'बीमार देश का बीमार शासक' कहना केवल बयानबाज़ी नहीं, बल्कि संभावित सैन्य या अर्धसैन्य हस्तक्षेप का संकेत है। कोकीन उत्पादन और तस्करी को आधार बनाकर अमेरिका कोलंबिया में प्रत्यक्ष कार्रवाई को नैतिक और राजनीतिक रूप से उचित ठहराने की कोशिश कर सकता है। यह रणनीति ड्रग वॉर की आड़ में सत्ता परिवर्तन की राह खोलती है।

क्यूबा

अधूरा सपना, अब निर्णायक मोड़ पर

क्यूबा दशकों से अमेरिकी सत्ता प्रतिष्ठान की आंखों में खटकता रहा है। शीत युद्ध के दौर से चला आ रहा यह वैचारिक संघर्ष अब ट्रंप के दौर में नए सिरे से उभरता दिख रहा है। व्हाइट हाउस का आकलन है कि वेनेजुएला से मिलने वाली आर्थिक और राजनीतिक मदद बंद होने के बाद क्यूबा की कम्युनिस्ट व्यवस्था स्वतः ढह जाएगी। ट्रंप के बयानों से संकेत मिलता है कि वाशिंगटन सक्रिय हस्तक्षेप से अधिक नियंत्रित पतन की रणनीति अपना सकता है, जिसमें आर्थिक दबाव और कूटनीतिक अलगाव प्रमुख हथियार होंगे।

मैक्सिको

संप्रभु पड़ोसी, लेकिन असहज लक्ष्य

मैक्सिको अमेरिका का साझेदार भी है और समस्या भी। ट्रंप के अनुसार, वहां कार्टेल सरकार से अधिक शक्तिशाली हो चुके हैं। यह कथन दरअसल मैक्सिको की संप्रभुता पर सीधा प्रश्नचिह्न है। राष्ट्रपति क्लाउडिया शिनबाम द्वारा अमेरिकी कार्रवाई का विरोध ट्रंप प्रशासन को और आक्रामक बना सकता है। सीमा सुरक्षा और नशीली दवाओं के नाम पर मैक्सिको पर सैन्य या आर्थिक दबाव बढ़ने की आशंका स्पष्ट है।

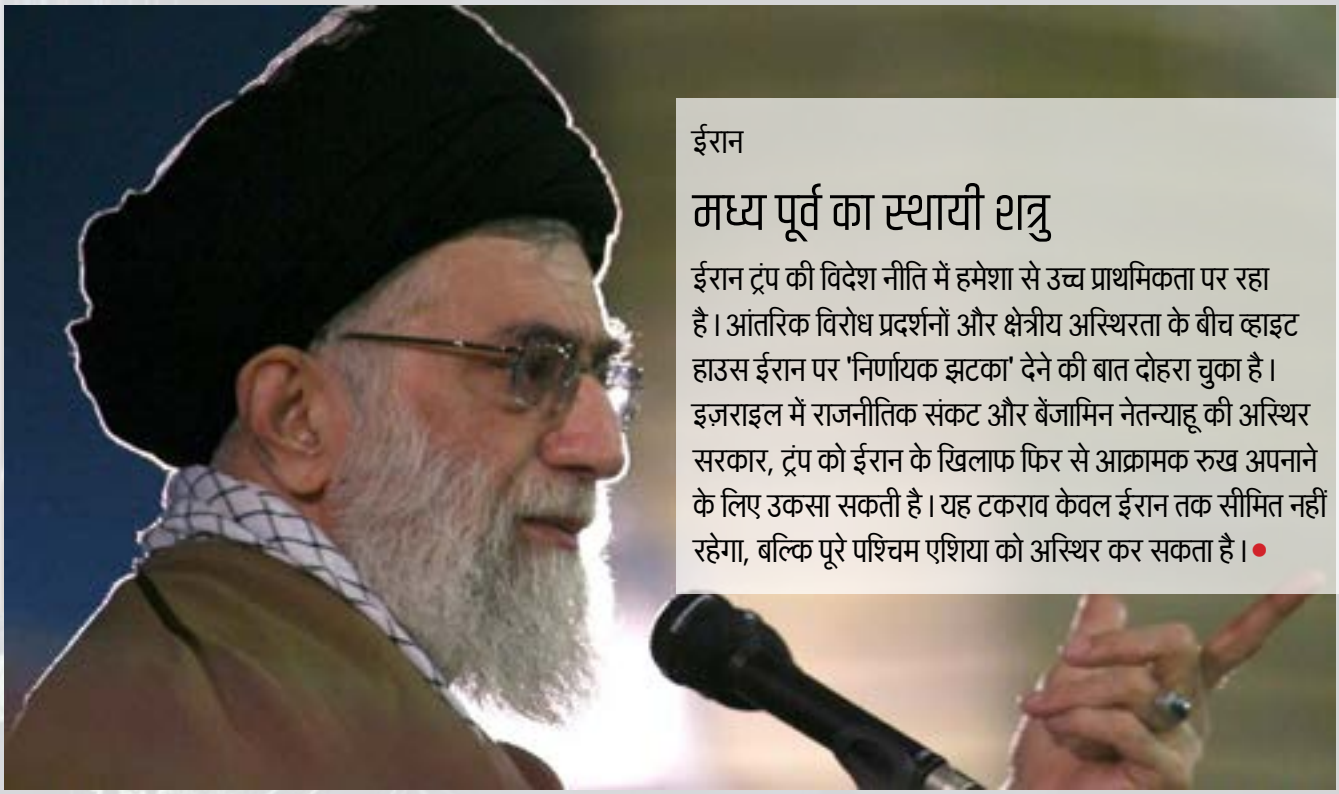

ईरान

मध्य पूर्व का स्थायी शत्रु

ईरान ट्रंप की विदेश नीति में हमेशा से उच्च प्राथमिकता पर रहा है। आंतरिक विरोध प्रदर्शनों और क्षेत्रीय अस्थिरता के बीच व्हाइट हाउस ईरान पर 'निर्णायक झटका' देने की बात दोहरा चुका है। इज़राइल में राजनीतिक संकट और बेंजामिन नेतन्याहू की अस्थिर सरकार, ट्रंप को ईरान के खिलाफ फिर से आक्रामक रुख अपनाने के लिए उकसा सकती है। यह टकराव केवल ईरान तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि पूरे पश्चिम एशिया को अस्थिर कर सकता है।

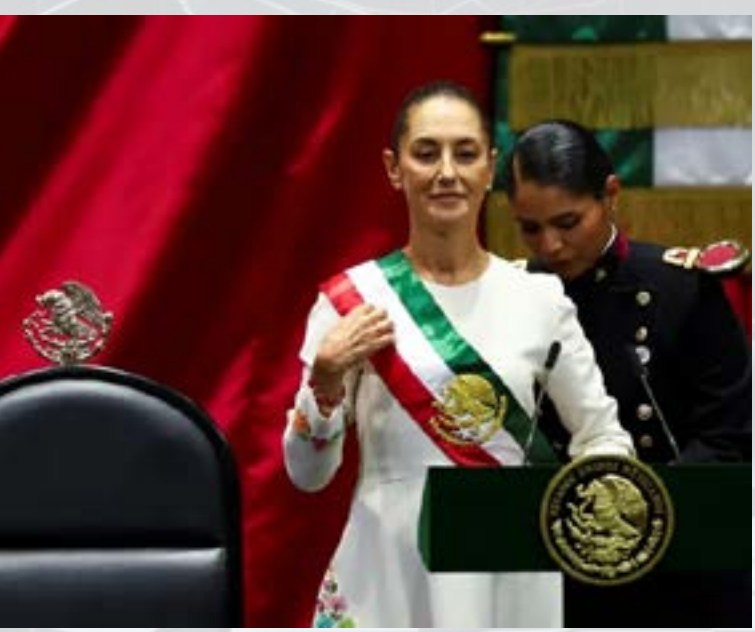

ग्रीनलैंड

रणनीति, संसाधन और सैन्य वर्चस्व

ग्रीनलैंड अब केवल बर्फ़ीला द्वीप नहीं, बल्कि अमेरिकी राष्ट्रीय सुरक्षा का घोषित लक्ष्य बन चुका है। ट्रंप के अनुसार, रूसी और चीनी जहाजों की मौजूदगी इसे रणनीतिक रूप से अनिवार्य बनाती है। डेनमार्क और यूरोप की आपत्तियों के बावजूद, ट्रंप ने साफ संकेत दिया है कि आवश्यकता पड़ने पर अमेरिका बल प्रयोग से भी पीछे नहीं हटेगा। यह पहली बार है जब किसी नाटो सदस्य के क्षेत्र को लेकर अमेरिका खुली सैन्य भाषा बोल रहा है।

कूटनीतिक अलार्म

भारत का इम्तिहान

सच्चिदानंद

वैश्विक व्यवस्था डगमगा चुकी है और अमेरिका अब नियमों से नहीं, अहंकार से संचालित हो रहा है। वेनेजुएला से ग्रीनलैंड तक आक्रामक कार्रवाइयां चेतावनी हैं। ऐसे समय भारत के सामने विकल्प नहीं, बल्कि एक निर्णायक रणनीतिक परीक्षा खड़ी है — झुकना या नेतृत्व करना।

नई दिल्ली के साउथ ब्लॉक में बैठी भारतीय कूटनीति की शीर्ष संस्थाओं के लिए वर्ष 2026 का सूर्योदय किसी सामान्य नए साल की दस्तक नहीं, बल्कि एक गंभीर चेतावनी लेकर आया है। भारतीय विदेश नीति, जो दशकों से 'रणनीतिक स्वायत्तता' और 'नियम-आधारित वैश्विक व्यवस्था' के सिद्धांतों पर टिकी थी, आज खुद को एक ऐसे चौराहे पर खड़ा पा रही है जहां दुनिया की सबसे बड़ी महाशक्ति—अमेरिका—नियमों को नहीं, बल्कि अपनी 'सनक' को प्राथमिकता दे रही है। भारत के रणनीतिकारों के लिए चिंता का विषय केवल सुदूर वेनेजुएला या ग्रीनलैंड में घट रही घटनाएं नहीं हैं, बल्कि चिंता का मूल यह है कि जिस लोकतांत्रिक और उदारवादी विश्व व्यवस्था के भरोसे भारत ने अपनी विकास यात्रा का खाका खींचा था, वह व्यवस्था अब ध्वस्त होती दिख रही है।

जब भारत अपनी स्वतंत्रता के 100वें वर्ष (2047) की ओर बढ़ने का सपना देख रहा है, तब वैश्विक पटल पर अचानक 'जंगल राज' की वापसी भारत के लिए एक कूटनीतिक अग्निपरीक्षा बन गई है। प्रश्न यह है कि जब आपका सबसे बड़ा रणनीतिक साझेदार (अमेरिका) ही वैश्विक स्थिरता के लिए

खतरा बनने लगे, तो भारत अपने राष्ट्रीय हितों—ऊर्जा सुरक्षा, सीमा सुरक्षा और आर्थिक विकास—की रक्षा कैसे करेगा?

वेनेजुएला कांड - भारत के लिए खतरे की घंटी

जनवरी 2026 की शुरुआत में ही एक ऐसी घटना घटी जिसने भारतीय कूटनीतिक गलियारों में सन्नाटा खींच दिया। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प द्वारा वेनेजुएला के राष्ट्रपति को उनकी पत्नी सहित राजधानी कराकस से 'उठवा' कर अमेरिका ले आना आधुनिक संप्रभुता के सिद्धांत पर एक तमाचा था। भारत, जो गुटनिरपेक्ष आंदोलन का नेता रहा है और हमेशा दूसरे देशों की संप्रभुता का सम्मान करता आया है, उसके लिए यह घटना एक 'वेक-अप कॉल' है।

यह केवल एक लैटिन अमेरिकी देश में तख्तापलट नहीं है - यह संकेत है कि अमेरिका अब किसी भी अंतरराष्ट्रीय कानून या नैतिकता से बंधा हुआ नहीं है। आज वेनेजुएला है, कल कोई और देश हो सकता है जो अमेरिकी हितों के आड़े आए। भारत के लिए यह इसलिए भी चिंताजनक है क्योंकि ट्रम्प की नजरें अब ग्रीनलैंड जैसे क्षेत्रों को खरीदने और ईरान को मिटाने पर हैं। एक अस्थिर पश्चिम एशिया, जहां भारत के लाखों नागरिक काम करते हैं और जहां से भारत की ऊर्जा जरूरतें पूरी होती हैं, भारत की सुरक्षा के लिए सीधा खतरा है।

2026 में, भारत का भ्रम टूट रहा है। ट्रम्प का यह कार्यकाल सिद्ध कर रहा है कि 'व्यापार' अब शांति का गारंटी नहीं, बल्कि युद्ध का हथियार बन चुका है। भारत देख रहा है कि कैसे अमेरिका अपनी आर्थिक ताकत का इस्तेमाल दूसरे देशों को झुकाने के लिए कर रहा है। भारत के नीति-निर्माता अब इस कठोर सत्य का सामना कर रहे हैं।

बाजारवाद के भ्रम का टूटना

भारत के आधुनिक दृष्टिकोण को समझने के लिए हमें थोड़ा पीछे मुड़ना होगा। 1991 में सोवियत संघ के विघटन और भारत के आर्थिक उदारीकरण के बाद, नई दिल्ली ने यह मान लिया था कि भविष्य की दुनिया 'बाजारवाद' और 'सॉफ्ट पावर' से चलेगी। शीत युद्ध समाप्त हो चुका था। भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था के दरवाजे खोले और धीरे-धीरे यह धारणा मजबूत हुई कि सैन्य शक्ति से ज्यादा महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति है।

वैश्वीकरण के उस दौर में भारत ने अमेरिका के साथ अपने रिश्तों को नया आयाम दिया। 1971 के घावों को, जब अमेरिका ने भारत के खिलाफ अपना सातवां बेड़ा भेजा था, भुला दिया गया। 21वीं सदी में भारत और अमेरिका 'स्वाभाविक सहयोगी' बन गए। भारत को लगा कि साझा लोकतांत्रिक मूल्य और विशाल बाजार दोनों देशों को हमेशा जोड़कर रखेंगे।

किंतु 2026 में, भारत का यह भ्रम टूट रहा है। ट्रम्प का यह कार्यकाल सिद्ध कर रहा है कि 'व्यापार' अब शांति का गारंटी नहीं, बल्कि युद्ध का हथियार बन चुका है। भारत देख रहा है कि कैसे अमेरिका अपनी आर्थिक ताकत का इस्तेमाल दूसरे देशों को झुकाने के लिए कर रहा है। भारत के नीति-निर्माता अब इस कठोर सत्य का सामना कर रहे हैं कि केवल जीडीपी का आकार सुरक्षा की गारंटी नहीं दे सकता; उसके लिए 'हार्ड पावर' और रणनीतिक दृढ़ता अनिवार्य है।

भारत-अमेरिका संबंध - आशाओं का बिखरना

वर्ष 2025 में जब डोनाल्ड ट्रम्प की सत्ता में वापसी हुई थी, तो भारतीय मीडिया और कुछ कूटनीतिज्ञों में उत्साह था। माना जा रहा था कि प्रधानमंत्री मोदी और ट्रम्प की व्यक्तिगत 'केमिस्ट्री' दोनों देशों के रिश्तों को नई ऊंचाइयों पर ले जाएगी। उम्मीद थी कि रक्षा सौदे तेजी से होंगे, तकनीक का हस्तांतरण होगा और चीन के खिलाफ एक मजबूत गठबंधन बनेगा। लेकिन

साल खत्म होते-होते यह 'हनीमून पीरियड' एक कड़वे यथार्थ में बदल गया।

भारत के लिए विडंबना यह है कि जिन व्यापारिक संबंधों को रिश्तों की धुरी माना जाता था, वही अब गले की फांस बन गए हैं। ट्रम्प की 'अमेरिका फर्स्ट' नीति भारत की 'आत्मनिर्भर भारत' और 'मेक इन इंडिया' पहल से सीधे टकरा रही है। वाशिंगटन अब भारत को एक सहयोगी के रूप में कम और एक 'टैरिफ किंग' या आर्थिक प्रतिद्वंद्वी के रूप में ज्यादा देख रहा है। यह बदलाव भारत के लिए झटका है, क्योंकि भारत ने अपनी सामरिक योजना में अमेरिका को एक ध्रुव माना था।

रूस, तेल और भारत का 'स्वाभिमान'

वर्तमान में भारत-अमेरिका तनाव का सबसे बड़ा और संवेदनशील बिंदु 'रूस' है। यह मुद्दा भारत के लिए केवल तेल का नहीं, बल्कि उसकी 'रणनीतिक स्वायत्तता' का है। यूक्रेन युद्ध के दौरान जब पूरे पश्चिम ने रूस का बहिष्कार किया, तब भारत ने अपने नागरिकों के हितों को सर्वोपरि रखते हुए रूस से सस्ता तेल खरीदना जारी रखा। भारत सरकार का तर्क स्पष्ट था—'हम अपनी ऊर्जा सुरक्षा को दूसरों की राजनीतिक लड़ाइयों का बंधक नहीं बना सकते।'

अमेरिका का आरोप है कि भारत पुतिन के युद्ध को वित्तपोषित कर रहा है। भारतीय दृष्टिकोण से यह आरोप न केवल अपमानजनक है, बल्कि पाखंडपूर्ण भी है। भारतीय विदेश मंत्री और कूटनीतिज्ञ लगातार इस बात को रेखांकित करते रहे हैं कि यूरोप ने भारत की तुलना में रूस से कहीं अधिक ऊर्जा खरीदी है। इसके बावजूद, अमेरिका भारत पर दबाव बना रहा है।

ट्रम्प, जो यूक्रेन युद्ध रुकवाने के अपने वादे में विफल रहे हैं, अपनी खीज भारत पर निकाल रहे हैं। 500 प्रतिशत टैरिफ लगाने की उनकी धमकी भारत को दंडित करने का प्रयास है। लेकिन भारत के लिए यह अब स्वाभिमान का प्रश्न बन गया है। अगर भारत आज अमेरिका के दबाव में रूस से अपने पुराने संबंध तोड़ लेता है, तो वह दुनिया को यह संदेश देगा कि भारत एक संप्रभु राष्ट्र नहीं, बल्कि अमेरिका का पिछलग्गू है। यह भारत की वैश्विक छवि के लिए आत्मघाती होगा।

आर्थिक ब्लैकमेल बनाम भारत की नई शक्ति

ट्रम्प द्वारा भारत पर 500 प्रतिशत टैरिफ लगाने की धमकी को भारत हल्के में नहीं ले सकता, लेकिन इससे डरने का दौर भी अब बीत चुका है। भारतीय अर्थव्यवस्था आज वह नहीं है जो 1990 में थी। आज भारत दुनिया की चौथीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और जल्द ही तीसरी बनने की राह पर है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य से देखें तो यह 'टैरिफ वार' एकतरफा नहीं हो सकती। भारत अमेरिका की बड़ी कंपनियों—एप्पल, गूगल, बोइंग, और सोशल मीडिया दिग्गजों—के लिए सबसे बड़ा और तेजी से बढ़ता बाजार है। अगर अमेरिका भारतीय फार्मा या टेक्सटाइल पर शुल्क लगाता है, तो भारत के पास भी जवाबी कार्रवाई के पर्याप्त विकल्प मौजूद हैं। इसके अलावा, अमेरिका को चीन का मुकाबला करने के लिए भारत की आपूर्ति श्रृंखला की जरूरत है। भारत जानता है कि ट्रम्प एक व्यापारी हैं और वे अंततः नुकसान का सौदा नहीं करेंगे, लेकिन उनकी ब्लैकमेलिंग की रणनीति का जवाब भारत को अपनी आर्थिक ताकत दिखाकर ही देना होगा।

अग्निपरीक्षा में भारत

इस वैश्विक अस्थिरता और अमेरिकी दबाव के बीच भारत के पास क्या विकल्प हैं? भारतीय रणनीतिकारों के अनुसार, भारत को तीन प्रमुख मोर्चों पर काम करना होगा। पहला, न झुकने की नीति- वेनेजुएला का उदाहरण सामने है।

कमजोरी दिखाना आक्रमण को निमंत्रण देना है। भारत को स्पष्ट संदेश देना होगा कि वह अपने राष्ट्रीय हितों से समझौता नहीं करेगा। रूस के साथ संबंध भारत की रक्षा तैयारियों के

ट्रम्प द्वारा भारत पर 500 प्रतिशत टैरिफ लगाने की धमकी को भारत हल्के में नहीं ले सकता, लेकिन इससे डरने का दौर भी अब बीत चुका है। भारतीय अर्थव्यवस्था आज वह नहीं है जो 1990 में थी। आज भारत दुनिया की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और जल्द ही तीसरी बनने की राह पर है।

लिए महत्वपूर्ण हैं और इन्हें अमेरिका की खुशी के लिए नहीं छोड़ा जा सकता। भारत को ट्रम्प को यह समझाना होगा कि एक मजबूत भारत ही अमेरिका के हित में है, न कि एक कमजोर और आश्रित भारत। दूसरा, बहु-संरेखण का विस्तार - भारत को अपनी पुरानी 'गुटनिरपेक्षता' को 'बहु-संरेखण' में बदलना जारी रखना होगा। इसका अर्थ है—क्वाड में अमेरिका के साथ रहना, लेकिन ब्रिक्स और शंघाई सहयोग संगठन में रूस और चीन के साथ भी संवाद बनाए रखना। फ्रांस, जापान, और जर्मनी जैसे मध्यम शक्तियों के साथ संबंधों को और गहरा करना होगा ताकि अमेरिका पर निर्भरता कम की जा सके। और अंत में तीसरा, ग्लोबल साउथ का नेतृत्व - भारत को विकासशील देशों अर्थात ग्लोबल साउथ की आवाज बनना होगा। वेनेजुएला जैसी घटनाएं अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका के देशों में डर पैदा करती हैं। भारत को इन देशों को आश्वस्त करना होगा कि वह एक ऐसी विश्व व्यवस्था का पक्षधर है जो 'शक्ति' पर नहीं, 'नियमों' पर आधारित हो। यह भारत को वैश्विक मंच पर एक नैतिक बल प्रदान करेगा।

अस्थिरता में स्थिरता का प्रतीक

अंततः, 2026 का यह भू-राजनीतिक परिदृश्य भारत की धैर्य और कूटनीतिक परिपक्वता की परीक्षा है। ट्रम्प का अमेरिका अविश्वसनीय और अस्थिर हो सकता है, लेकिन भारत को 'स्थिरता के ध्रुव' के रूप में उभरना होगा।

वेनेजुएला में राष्ट्रपति का अपहरण और ग्रीनलैंड पर कब्जे की अमेरिकी मंशा यह बताती है कि दुनिया एक खतरनाक दौर में प्रवेश कर चुकी है। ऐसे समय में, भारत के लिए 'वसुधैव कुटुम्बकम' का आदर्श केवल एक नारा नहीं, बल्कि एक रणनीतिक आवश्यकता है। भारत को दुनिया को यह दिखाना होगा कि वह महाशक्तियों के खेल में मोहरा नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र खिलाड़ी है।

भारत और अमेरिका के रिश्ते टूटेंगे नहीं, क्योंकि दोनों की एक-दूसरे को जरूरत है (विशेषकर चीन के संदर्भ में)। लेकिन रिश्तों की शर्तों को पुनर्परिभाषित करना होगा। भारत को यह सुनिश्चित करना होगा कि वाशिंगटन यह समझे कि 21वीं सदी का भारत बराबरी की साझेदारी चाहता है, अधीनस्थता नहीं। इस अस्थिरता के दौर में, भारत का सबसे बड़ा हथियार उसका 'आत्मबल' और उसकी 'रणनीतिक स्वायत्तता' ही होगी। ●

चीनी मुद्रा का टूटता भ्रम

ब्रैड डब्ल्यू. सेटसर

जिस युआन को बीजिंग वर्षों से निर्यात-आधारित स्थिरता का कवच मानता रहा, वही आज वैश्विक दबाव में दरक रहा है। बढ़ता व्यापार अधिशेष, बदलता बाजार और पश्चिमी असहजता—चीनी मुद्रा अब एक कठिन चौराहे पर खड़ी है।

वैश्विक अर्थव्यवस्था के रंगमंच पर एक बड़ा और अप्रत्याशित बदलाव आकार ले रहा है। लंबे समय से चीन पर नजर रखने वाले अर्थशास्त्रियों और रणनीतिकारों के बीच यह एक स्थापित सत्य माना जाता रहा है कि बीजिंग कभी भी अपनी मुद्रा 'युआन' के मूल्य में भारी वृद्धि की अनुमति नहीं देगा। इसका तर्क सीधा और सरल था—चीन की घरेलू अर्थव्यवस्था लड़खड़ा रही है, और उसे सहारा देने के लिए निर्यात के उस बैसाखी की जरूरत है जो सस्ती मुद्रा से मिलती है। जॉर्ज मैग्नस ने कभी सोशल मीडिया पर लिखा था कि कोविड के बाद चीन का निर्यात बूम उसकी सफलता का नहीं, बल्कि उसकी कमजोर घरेलू मांग का प्रतीक है। उनका मानना था कि बीजिंग इस समस्या को सुलझाने में या तो अक्षम है या इच्छुक नहीं है। परिणामस्वरूप, भले ही डॉलर के मुकाबले युआन थोड़ा ऊपर चढ़ा हो, लेकिन संरचनात्मक रूप से इसे कमजोर ही माना जाता रहा।

किंतु, अब हम 2026 के जिस मुकाम पर खड़े हैं, वहां पुराने सिद्धांत ध्वस्त हो रहे हैं। यह सच है कि पिछले दो वर्षों में चीन की आर्थिक वृद्धि का लगभग एक तिहाई हिस्सा शुद्ध निर्यात से आया है। कई विश्लेषक तो यह भी मानते हैं कि घरेलू खपत और निवेश के आंकड़े बढ़ा-चढ़ाकर पेश किए गए हैं, इसलिए निर्यात का वास्तविक योगदान इससे कहीं अधिक हो सकता है। लेकिन अब, बाजार की हवा बदल चुकी है। चीन की मुद्रा अब ऊपर उठने के लिए बेताब है और यह दबाव बीजिंग के लिए एक नई और जटिल पहेली बनकर उभरा है।

अचल वस्तु और अनियंत्रित शक्ति का टकराव

व्यापार जगत के जानकारों के बीच अब यह आम सहमति बन रही है कि चीन अनिश्चितकाल तक केवल निर्यात के दम पर अपनी विकास दर को बनाए नहीं रख सकता। ऐसा इसलिए नहीं कि चीन उत्पादन नहीं कर सकता, बल्कि इसलिए कि वैश्विक व्यापार प्रणाली—जो पहले से ही राष्ट्रपति ट्रम्प की नीतियों के कारण भारी दबाव में है—चीन के इस 'निर्यात-बाढ़' को और अधिक सोखने की स्थिति में नहीं है। फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रों ने पूरे पश्चिम की हताशा को स्वर देते हुए चेतावनी दी थी कि 'ये व्यापारिक असंतुलन अब असहनीय होते जा रहे हैं।'

अमेरिकी वित्त मंत्रालय, जो मंत्री बेसेंट के नेतृत्व में मुद्रा के मुद्दों पर अब तक सुस्त नजर आ रहा था, अब अपनी नींद से जागने को विवश है। स्थिति यह है कि एक 'अचल वस्तु'—यानी युआन को स्थिर रखने की चीन की जिद—का सामना एक 'अनियंत्रित राजनीतिक शक्ति' से हो रहा है। यह शक्ति है चीन के व्यापारिक भागीदारों की वह सीमा, जिसके आगे वे चीन के लगातार बढ़ते व्यापार अधिशेष को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं।

यदि चीन सट्टेबाजी के दबाव को कम करने के लिए युआन की सांकेतिक वृद्धि को कुछ प्रतिशत तक सीमित रखता है, तो भी उसकी वास्तविक विनिमय दर में कोई खास बदलाव नहीं आएगा। और यदि वास्तविक प्रभावी युआन अपने वर्तमान अवमूल्यित स्तर पर बना रहता है, तो चीन वैश्विक बाजार में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाता रहेगा, जो अंततः व्यापार युद्ध को और भड़काएगा।

अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष का बदलता रुख

सबसे महत्वपूर्ण बदलाव यह है कि अब न तो अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमईसी) और न ही विदेशी मुद्रा बाजार चीन की विनिमय दर की अनदेखी कर रहे हैं। एक साल पहले तक स्थिति अलग थी। आईएमईसी की 2024 की रिपोर्ट उस समय

की पारंपरिक सोच का दस्तावेज थी। लेकिन अब, आईएमईसी की प्रबंध निदेशक क्रिस्टालिना जॉर्जीवा की टिप्पणियां इस बात की गवाह हैं कि युआन का मूल्यांकन काफी कम है और इस अवमूल्यन ने चीन के निर्यात प्रदर्शन को कृत्रिम रूप से बढ़ाया है।

आज इस बात पर व्यापक सहमति है कि चीन का व्यापार अधिशेष एक गंभीर चिंता का विषय है। पॉल क्रुगमैन जैसे अर्थशास्त्री भी यह मान रहे हैं कि चीन के अधिशेष का असली आकार केवल रिपोर्ट किए गए चालू खाता अधिशेष से नहीं मापा जा सकता। आधिकारिक आंकड़े भले ही 2025 में 700 अरब डॉलर के करीब पहुंचने का संकेत दे रहे हों, लेकिन वास्तविक अधिशेष संभवतः 1 खरब (एक ट्रिलियन) डॉलर के करीब पहुंच चुका है। यह वह विशाल धनराशि है जो वैश्विक संतुलन को बिगाड़ने के लिए पर्याप्त है।

युआन पर मजबूती का दबाव

बाजार अब यह पहचान रहा है कि युआन पर मूल्य वृद्धि का भारी दबाव है। गोल्डमैन सैक्स द्वारा 2025 में युआन में बड़ी मजबूती की भविष्यवाणी इसी बदलाव का संकेत है। कुछ समय पहले तक माना जाता था कि युआन पर गिरने का दबाव है, लेकिन विदेशी मुद्रा निपटान (सेटल्यामेंट) के आंकड़े एक अलग ही कहानी बयां कर रहे हैं।

यह दबाव चीन के उस वित्तीय ढांचे के भीतर से आ रहा है जो अभी भी काफी हद तक बंद है। चीन अचानक अपने दरवाजे खोलकर पूंजी के अनियंत्रित प्रवाह की अनुमति नहीं देने वाला, इसलिए हमें मौजूदा प्रणाली के भीतर के संकेतों को समझना होगा। और संकेत स्पष्ट हैं—बाजार युआन को ऊपर ले जाना चाहता है।

पिछले कई महीनों से विदेशी मुद्रा की शुद्ध खरीद औसतन 30 अरब डॉलर प्रति माह रही है। दिसंबर के आंकड़ों में यह संख्या अक्टूबर और नवंबर की तुलना में काफी बड़ी होने के संकेत मिले हैं। ब्लूमबर्ग की रिपोर्टें भी चीन के सरकारी बैंकों की संदिग्ध गतिविधियों की ओर इशारा कर रही हैं। परिणामस्वरूप, चीनी अधिकारी यह संकेत देने की पूरी कोशिश कर रहे हैं कि युआन में निवेश एकतरफा दांव नहीं है, ताकि निवेशक भेड़चाल में न भागें।

बीजिंग की दुविधा

यही वह केंद्रीय दुविधा है जिसका सामना चीन अपने विनिमय दर प्रबंधन में कर रहा है। पिछले कुछ वर्षों में, ब्याज दरों का अंतर डॉलर के पक्ष में था। 2022 में डॉलर के मुकाबले युआन की गिरावट, चीन की अपनी आर्थिक मंदी और टैरिफ की धमकियों ने मिलकर निजी पूंजी को चीन से बाहर धकेला था। इस निजी पूंजी के पलायन ने बढ़ते व्यापार अधिशेष को संतुलित कर दिया था।

लेकिन पिछली कुछ तिमाहियों में परिदृश्य बदल गया है। निजी पूंजी का पलायन अब उस विशाल व्यापार अधिशेष की बराबरी नहीं कर पा रहा है। जैसे ही युआन ने डॉलर के मुकाबले रेंगना शुरू किया, चीन के सरकारी बैंकों ने विदेशी संपत्ति जमा करना शुरू कर दिया। यह संचय सालाना 300 अरब डॉलर या उससे थोड़ा अधिक है। यद्यपि चीन की विशाल अर्थव्यवस्था के सापेक्ष यह बहुत बड़ा नहीं है, लेकिन इसे एक प्रकार का 'पिछला दरवाजा' (बैकडोर) हस्तक्षेप माना जा सकता है।

समस्या यह है कि सरकारी बैंकों द्वारा इस संचय को सीमित रखना अब कठिन होता जा रहा है। अंतर्निहित व्यापार अधिशेष इतना विशाल है कि यदि पूंजी प्रवाह की दिशा थोड़ी भी बदलती है, तो मुद्रा पर दबाव कई गुना बढ़ जाएगा। यदि बाजार को यह आभास हो गया कि युआन को धीरे-धीरे ही सही, लेकिन मजबूत होने दिया जाएगा, तो चीनी निर्यातक और मुद्रा व्यापारी युआन पर दांव लगाना शुरू कर देंगे।

स्टीफन जेन का तर्क और छिपी हुई मांग

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री स्टीफन जेन का तर्क इस संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। उनका मानना है कि चीनी कंपनियों के पास युआन की भारी 'प्रच्छन्न मांग' है। इन कंपनियों ने पिछले पांच वर्षों में भारी मात्रा में डॉलर जमा (होर्डिंग) किए हैं। यदि युआन में एक धीमी लेकिन अनुमानित वृद्धि दिखाई देती है, तो वह ऑफशोर डॉलर वापस चीन लौटने लगेगा। यह घर वापसी युआन पर मूल्य वृद्धि के दबाव को और बढ़ा देगी।

अंतर्निहित व्यापार अधिशेष इतना विशाल है कि यदि पूंजी प्रवाह की दिशा थोड़ी भी बदलती है, तो मुद्रा पर दबाव कई गुना बढ़ जाएगा। यदि बाजार को यह आभास हो गया कि युआन मजबूत होगा, तो चीनी निर्यातक और मुद्रा व्यापारी युआन पर दांव लगाना शुरू कर देंगे।

दूसरे शब्दों में, चीन के विदेशी मुद्रा प्रबंधन का काम फिर से दिलचस्प और चुनौतीपूर्ण होने वाला है।

पुराने नारों का अंत

यदि चीन युआन की सांकेतिक वृद्धि को 2-3 प्रतिशत तक सीमित रखता है (जो डॉलर और युआन के बीच ब्याज दर के अंतर से कम है), तो वह सट्टेबाजी के दबाव को कुछ हद तक रोक सकता है। लेकिन यह युआन के वास्तविक अवमूल्यन को ठीक नहीं करेगा। इसका परिणाम यह होगा कि चीन का अधिशेष और बढ़ेगा, जो किसी न किसी चरण में उसके व्यापारिक भागीदारों—विशेषकर अमेरिका और यूरोप—की ओर से तीखी प्रतिक्रिया को आमंत्रित करेगा।

दूसरी ओर, यदि मूल्य वृद्धि की गति तेज की जाती है, तो यह चीनी ऑफशोर पैसे को वापस खींच लाएगा, जिससे बाजार में अस्थिरता आ सकती है। इस प्रकार, मूल्य वृद्धि को नियंत्रित रखने के लिए बाजार में 'कम' नहीं, बल्कि 'अधिक' हस्तक्षेप की आवश्यकता होगी। ये वे दुविधाएं हैं जिनका सामना चीन अतीत में भी करता रहा है। इनके उत्तर मौजूद हैं, लेकिन उनके लिए बीजिंग को कुछ मौलिक और कठिन विकल्प चुनने होंगे। पुराने नारे दोहराना और निवेशकों को एकतरफा दांव के खिलाफ चेतावनी देना अब अधिक समय तक काम नहीं करेगा। 2026 में, चीन को यह तय करना होगा कि वह अपनी मुद्रा को वैश्विक यथार्थ के अनुरूप ढालना चाहता है या फिर एक नए और विनाशकारी व्यापार युद्ध का जोखिम उठाना चाहता है।

अमेरिकी वित्त मंत्रालय की रिपोर्ट, जो सरकारी शटडाउन के कारण विलंबित हुई थी, अब संप्रभु धन कोषों और सरकारी बैंकों की गतिविधियों की बारीकी से जांच करने का वादा करती है। इसका अर्थ है कि चीन के 'बैकडोर हस्तक्षेप' को अब और अधिक सख्ती से उजागर किया जाएगा। डच व्यापार श्रृंखला के आंकड़े बताते हैं कि चीनी निर्यात ने वैश्विक व्यापार को पछाड़ दिया है, जबकि आयात बुरी तरह पिछड़ा है। यह 'अस्थिरता' की परिभाषा है। और अस्थिरता, चाहे वह आर्थिक हो या भू-राजनीतिक, अपनी कीमत जरूर वसूलती है। ●

शांति की मृगमरीचिका

'शांति' के नाम पर गाजा में निजी सत्ता खड़ी करने की ट्रम्प की पहल दरअसल कूटनीति नहीं, सौदेबाज़ी है। भारत के लिए यह सम्मान नहीं, बल्कि रणनीतिक स्वायत्तता और नैतिक विदेश नीति की कठोर परीक्षा है।

सतीश चंद्र

वैश्विक कूटनीति की बिसात पर चालें अक्सर उतनी सीधी नहीं होतीं जितनी वे प्रथम दृष्टया प्रतीत होती हैं; वे बहुपरतीय होती हैं और उनके गर्भ में विरोधाभासों का एक अनंत संसार छिपा होता है। जनवरी 2026 की सर्द हवाओं के बीच, नई दिल्ली के साउथ ब्लॉक के गलियारों में एक प्रस्ताव ने अजीब सी सिहरन और गर्माहट पैदा कर दी है। भारत में अमेरिका के राजदूत सर्जियो गोर ने जब डिजिटल मंच पर यह साझा किया कि राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को गाजा के लिए नवगठित 'बोर्ड ऑफ पीस' में शामिल होने का निमंत्रण दिया है, तो सतही तौर पर यह भारत की बढ़ती वैश्विक हैसियत और प्रभाव का परिचायक प्रतीत हुआ। राजदूत गोर, जिन्होंने हाल ही में राष्ट्रपति भवन के प्रांगण में राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू के समक्ष अपना परिचय पत्र प्रस्तुत किया है, का तर्क संभवतः यह होगा कि इजराइल के साथ भारत के प्रगाढ़ संबंध और फिलिस्तीनी हितों के प्रति उसकी ऐतिहासिक व नैतिक प्रतिबद्धता उसे इस बोर्ड के लिए एक आदर्श उम्मीदवार बनाती है।

किंतु, कूटनीति के गहरे सागर में जो सतह पर दिखता है, वह अक्सर यथार्थ नहीं होता। यह निमंत्रण एक 'स्वर्ण पिंजरे' जैसा है—बाहर से चमकदार और लुभावना, लेकिन भीतर से किसी भी स्वाभिमानी राष्ट्र की रणनीतिक स्वायत्तता को कैद कर लेने वाला। भारत, जो अपनी हजारों वर्षों की सभ्यतागत विरासत, लोकतांत्रिक मूल्यों और गुटनिरपेक्षता की नींव पर खड़ा है, के लिए यह क्षण भावुकता में बहने का नहीं, बल्कि अत्यंत सतर्कता, दूरदर्शिता और रणनीतिक विवेक का है। यह प्रस्ताव केवल गाजा में शांति बहाली का नहीं है, बल्कि यह संयुक्त राष्ट्र जैसी वैश्विक संस्थाओं के अस्तित्व और भारत की अपनी कूटनीतिक आत्मा के बीच चुनाव का एक गंभीर प्रश्न है।

शांति का 'बोर्ड' या संयुक्त राष्ट्र के समानांतर एक निजी सत्ता?

इस प्रस्ताव की तह में जाने पर एक कड़वी और असुविधाजनक सच्चाई उभरती है। ट्रम्प का यह तथाकथित 'शांति बोर्ड' वास्तव में गाजा में मानवीय सहायता या शांति स्थापना का कोई पवित्र अनुष्ठान नहीं, बल्कि संयुक्त

राष्ट्र के समानांतर एक निजी और कॉरपोरेट सत्ता खड़ी करने का दुस्साहसपूर्ण प्रयास है। सितंबर 2025 में प्रस्तावित इस बोर्ड का घोषित उद्देश्य भले ही 'स्थिरता को बढ़ावा देना, कानून का शासन बहाल करना और संघर्ष क्षेत्रों में शांति सुरक्षित करना' बताया गया हो, लेकिन इसकी अंतर्निहित मंशा और इसकी आत्मा कुछ और ही कहानी बयां करती है।

राष्ट्रपति ट्रम्प ने 15 जनवरी को इस बोर्ड की औपचारिक घोषणा करते हुए जो तर्क दिया, वह किसी भी लोकतांत्रिक देश के लिए खतरे की घंटी है। उन्होंने कहा कि 'संयुक्त राष्ट्र ने मेरी कभी मदद नहीं की।' यह एक वाक्य ही इस बोर्ड की बुनियाद को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। यह बोर्ड मानवीय करुणा या विश्व शांति की अभिलाषा से नहीं, बल्कि ट्रम्प की व्यक्तिगत कुंठा और संयुक्त राष्ट्र को अप्रासंगिक बनाने की उनकी पुरानी और जगजाहिर महत्वाकांक्षा से जन्मा है। भारत, जो संयुक्त राष्ट्र का संस्थापक सदस्य है और जिसने पिछले सात दशकों में बहुपक्षवाद की वकालत करते हुए विश्व मंच पर अपनी एक अलग पहचान बनाई है, क्या वह एक ऐसे मंच का हिस्सा बन सकता है जिसका एकमात्र उद्देश्य उस वैश्विक व्यवस्था को ध्वस्त करना है जिसे बनाने में स्वयं भारत का पसीना और रक्त लगा है? यह भारत के लिए आत्मघाती कदम होगा।

गाजा: 'मध्य पूर्व का रिवेरा'

ट्रम्प का दृष्टिकोण कूटनीतिक कम और विशुद्ध रूप से व्यावसायिक अधिक है। फरवरी 2025 में इजराइली प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू के साथ हुई बैठक में ट्रम्प ने गाजा को 'मध्य पूर्व का रिवेरा' बनाने का सपना देखा था। उनके लिए, युद्ध से ध्वस्त गाजा एक मानवीय त्रासदी नहीं, जहां लाखों लोग बेघर और भूखे हैं, बल्कि एक 'डिमोलिशन साइट' है, जिसमें गगनचुंबी इमारतें खड़ी करने, होटल बनाने और रियल एस्टेट का मुनाफा कमाने की अपार संभावनाएं हैं।

जब एक महाशक्ति का राष्ट्रपति किसी संप्रभु क्षेत्र को 'कब्जा करने' और उस पर 'स्वामित्व' जमाने की बात करता है, तो यह आधुनिक युग में 19वीं सदी की उपनिवेशवादी मानसिकता की दुर्गंध देता है। भारत, जिसने सदियों तक औपनिवेशिक शोषण का दंश झेला है और जो हमेशा साम्राज्यवाद के खिलाफ खड़ा रहा है, क्या वह गाजा के पुनर्निर्माण के नाम पर चल रहे इस 'रियल एस्टेट प्रोजेक्ट' का भागीदार बन सकता है? गाजा के मलबे के नीचे दबी मासूमों की चीखें किसी 'रिवेरा' के निर्माण की ईंटें नहीं बन सकतीं। भारत की अंतरात्मा, उसके संस्कार और उसकी विदेश नीति का नैतिक आधार उसे ऐसे किसी भी उपक्रम से दूर रहने की सलाह देता है जो पीड़ितों के घावों पर मरहम लगाने के बजाय उन पर कंक्रीट का जंगल खड़ा करने को प्राथमिकता देता हो।

एक व्यक्ति का दरबार और अरबों का 'प्रवेश शुल्क'

इस बोर्ड की संरचना किसी लोकतांत्रिक संस्था की नहीं, बल्कि एक तानाशाही कॉरपोरेट बोर्ड की तरह है। इसके स्वयंभू 'चेयरमैन ट्रम्प' के पास प्रस्ताव पारित करने, बिना किसी परामर्श के पहल करने और वीटो शक्ति का उपयोग करने का एकाधिकार होगा। यह 'एक व्यक्ति का शो' है, जहाँ अन्य देशों की भूमिका केवल मूक दर्शकों या वित्तपोषकों की होगी।

सबसे हास्यास्पद और चिंताजनक पहलू यह है कि इस बोर्ड में स्थायी सीट पाने के लिए देशों को 1 अरब डॉलर यानी लगभग 8300 करोड़ रुपये का 'प्रवेश शुल्क' चुकाना होगा। शांति की कीमत लगाना कूटनीति का सबसे भद्दा मजाक है। क्या भारत, जो विश्वगुरु बनने की आकांक्षा रखता है और जिसके अपने देश में विकास की अनंत आवश्यकताएं हैं, एक अमेरिकी राजनेता की व्यक्तिगत सनक और फंतासी से संचालित बोर्ड का सदस्य बनने के लिए अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा देगा? यह न केवल भारत की रणनीतिक स्वायत्तता का अपमान होगा, बल्कि यह उस सिद्धांत के भी खिलाफ होगा जिसके तहत भारत हमेशा संयुक्त राष्ट्र के झंडे तले ही शांति अभियानों में भाग लेता आया है।

इसके अतिरिक्त, इस बोर्ड की आयु भी ट्रम्प के कार्यकाल या उनकी व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर करती है। जब ट्रम्प सत्ता से हटेंगे या उनका मन बदल जाएगा, तो यह बोर्ड ताश के पत्तों की तरह बिखर सकता है। भारत जैसी स्थिर, गंभीर और दीर्घकालिक सोच रखने वाली शक्ति के लिए ऐसे तदर्थ और अस्थाई मंचों में निवेश करना रणनीतिक अदूरदर्शिता होगी। भारत की विदेश नीति क्षणिक लाभों के लिए नहीं, बल्कि शाश्वत मूल्यों के लिए जानी जाती है।

भारत का कूटनीतिक चरित्र और नीतियों का विरोधाभास

स्वतंत्रता के बाद के सात दशकों में, भारत की विदेश नीति की

सफलता गुटनिरपेक्षता, रणनीतिक स्वायत्तता और राष्ट्रीय स्वाभिमान को बनाए रखने में निहित रही है। यद्यपि भारत के संयुक्त राष्ट्र की कार्यप्रणाली को लेकर अपने गंभीर मतभेद हैं और वह सुरक्षा परिषद में सुधारों की मांग करता रहा है, तथापि वह कभी भी संयुक्त राष्ट्र को समाप्त करने या उसे कमजोर करने के पक्ष में नहीं रहा है। भारत का यह दृढ़ विश्वास है कि इजराइल-फिलिस्तीन संघर्ष जैसे ध्रुवीकरण करने वाले और भावनात्मक मुद्दों को केवल संस्थागत दृष्टिकोण से ही सुलझाया जा सकता है, किसी व्यक्ति विशेष के एजेंडे से नहीं।

ट्रम्प का इजराइल-फिलिस्तीन दृष्टिकोण भारत की पारंपरिक और संतुलित नीति से मेल नहीं खाता। ट्रम्प ने यरूशलेम को इजराइल की राजधानी के रूप में मान्यता देने में जो जल्दबाजी दिखाई और फिलिस्तीनी प्राधिकरण को पूरी तरह से हाशिए पर धकेल दिया, वह भारत के रुख के बिल्कुल विपरीत है। भारत आज भी तेल अवीव को ही इजराइल की कूटनीतिक राजधानी मानता है और शांति वार्ता में फिलिस्तीनी प्राधिकरण की प्रमुखता का समर्थन करता है। भारत का स्पष्ट मानना है कि 'दो-राष्ट्र समाधान' के ढांचे के भीतर शांतिपूर्ण बातचीत ही मध्य पूर्व में स्थाई शांति की गारंटी है। भारत ने हमेशा—चाहे वह इजराइल-फिलिस्तीन हो या रूस-यूक्रेन—तीसरे पक्ष की मध्यस्थता के बजाय आपसी बातचीत या संयुक्त राष्ट्र की निगरानी में समाधान को प्राथमिकता दी है। ट्रम्प का बोर्ड इस सिद्धांत का सीधा उल्लंघन है।

इतिहास के पन्नों से सबक: वाजपेयी की विरासत

यह पहली बार नहीं है जब भारत के सामने अमेरिका की एकतरफा पहल में शामिल होने का दबाव है। इतिहास हमें राह दिखाता है। वर्ष 2003 में, जब जॉर्ज बुश प्रशासन ने इराक युद्ध के लिए भारतीय सेना की मांग की थी और भारत पर भारी दबाव बनाया था, तब तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने अपनी राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हुए उसे ठुकरा दिया था। उनका तर्क स्पष्ट और अडिग था—भारत केवल संयुक्त राष्ट्र के बैनर तले ही शांति अभियानों में अपने सैनिक भेजेगा, किसी देश विशेष के युद्ध या अभियान में नहीं।

आज प्रधानमंत्री मोदी के सामने भी कमोबेश वैसी ही स्थिति है। ट्रम्प का यह बोर्ड संयुक्त राष्ट्र के जनादेश से रहित है। इसमें शामिल होकर भारत अपनी उस विश्वसनीयता को जोखिम में डाल देगा जो उसने दशकों में 'ग्लोबल साउथ' की आवाज बनकर कमाई है। यदि भारत इस निजी प्रोजेक्ट का समर्थन करता है, तो वह उन अरब देशों और फिलिस्तीनी लोगों की नजरों में अपनी साख खो देगा जो भारत को एक निष्पक्ष मित्र मानते हैं।

रचनात्मक दूरी और संस्थागत सहयोग

तो क्या भारत को इस प्रस्ताव को सिरे से खारिज कर देना चाहिए? कूटनीति में 'ना' कहने का भी एक तरीका होता है। ट्रम्प के बोर्ड में शामिल न होने का अर्थ यह कतई नहीं है कि भारत मध्य पूर्व के मुद्दों से मुंह मोड़ ले या वहां की पीड़ा के प्रति उदासीन हो जाए। भारत के पास अपनी भूमिका निभाने के लिए कई सार्थक और सम्मानजनक रास्ते हैं, जिनके लिए उसे किसी अरबपति क्लब की सदस्यता शुल्क चुकाने की आवश्यकता नहीं है।

भारत मानवीय सहायता और पुनर्निर्माण के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा सकता है। वह सीधे तौर पर या 'फिलिस्तीन शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र राहत और कार्य एजेंसी' के माध्यम से गाजा के लोगों को चिकित्सा सहायता, भोजन और पुनर्निर्माण सामग्री प्रदान कर सकता है। यह मदद किसी राजनीतिक शर्त या 'फीस' के बिना होनी चाहिए, जो भारत की 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना के अनुरूप हो। इसके अलावा, रामल्ला में अपने प्रतिनिधि कार्यालय के माध्यम से भारत फिलिस्तीनी नेतृत्व के साथ संवाद जारी रख सकता है और शांति प्रयासों में रचनात्मक योगदान दे सकता है। भारत को वाशिंगटन पर यह कूटनीतिक दबाव भी बनाना चाहिए कि यदि वह वास्तव में शांति चाहता है, तो इस बोर्ड को संयुक्त राष्ट्र के 'शांति अभियान विभाग' का हिस्सा बनाया जाए। इससे इस पहल को वैश्विक वैधता मिलेगी और यह किसी व्यक्ति की निजी जागीर बनने से बच जाएगा।

मृगमरीचिका से परे यथार्थ का चयन

अंततः, ट्रम्प का 'शांति बोर्ड' रेगिस्तान में चमकती हुई एक ऐसी मृगमरीचिका है, जिसके पास जाने पर प्यास बुझने के बजाय केवल रेत और हताशा ही हाथ लगेगी। यह एक 'जाल' है जो भारत को संयुक्त राष्ट्र विरोधी खेमे में खड़ा कर सकता है और उसकी गुटनिरपेक्ष छवि को धूमिल कर सकता है। कूटनीति का तकाजा है कि भारत, अमेरिका के साथ अपने द्विपक्षीय संबंधों की प्रगाढ़ता को बनाए रखे, लेकिन अपनी रणनीतिक स्वायत्तता को गिरवी न रखे।

भारत को बड़ी विनम्रता लेकिन दृढ़ता के साथ इस निमंत्रण को अस्वीकार करना चाहिए, यह स्पष्ट करते हुए कि 'शांति, व्यापार की वस्तु नहीं है, और न ही कूटनीति कोई रियल एस्टेट का सौदा।' भारत का भविष्य बहुपक्षवाद और नियम-आधारित विश्व व्यवस्था में निहित है, न कि 'चेयरमैन ट्रम्प' की अध्यक्षता वाले किसी महंगे, अस्थिर और व्यक्तिगत क्लब में। एक विश्वगुरु के रूप में भारत का दायित्व है कि वह आसान और लुभावने रास्ते के बजाय सही और नीतिगत रास्ते का चयन करे, भले ही वह रास्ता कांटों भरा क्यों न हो। भारत की शक्ति उसकी नैतिकता में है, और उसे किसी भी कीमत पर बचाए रखना ही सच्ची कूटनीति है। ●

लेखक काबुल में भारतीय राजनयिक के रूप में सेवा दे चुके हैं।

भारत की अग्निपरीक्षा

संतोष कुमार

ब्रिक्स की अध्यक्षता संभालते हुए भारत एक ऐसे वैश्विक मोड़ पर खड़ा है, जहां बहुध्रुवीयता आकार ले रही है और एकतरफावाद आक्रामक है। 2026 भारत के लिए औपचारिक जिम्मेदारी नहीं, बल्कि ग्लोबल साउथ के नेतृत्व की निर्णायक परीक्षा है।

इतिहास की घड़ी में 1 जनवरी, 2026 की तारीख केवल एक कैलेंडर बदलने की घटना नहीं थी, बल्कि यह वैश्विक भू-राजनीति में एक युगांतरकारी बदलाव का संकेत थी। जी-20 के सफल और ऐतिहासिक आयोजन के बाद, जब भारत ने 'ब्रिक्स' की अध्यक्षता का दायित्व संभाला, तो यह स्पष्ट हो गया कि विश्व व्यवस्था अब पुरानी धुरी पर घूमने को तैयार नहीं है। यह समय एक संक्रमण काल है—एक ऐसा दौर जहां बहुध्रुवीयता का जन्म हो रहा है, लेकिन प्रसव पीड़ा अत्यंत तीव्र है। महाशक्तियों की प्रतिद्वंद्विता चरम पर है, बहुपक्षवाद की आत्मा कराह रही है और एकतरफावाद का राक्षस फिर से सिर उठा रहा है।

ऐसे विषम समय में, भारत के हाथों में ब्रिक्स की कमान केवल एक कूटनीतिक औपचारिकता नहीं, बल्कि 'ग्लोबल साउथ' के स्वाभिमान की रक्षा का एक वज्र-संकल्प है। नई दिल्ली के सामने चुनौती दोहरी है - एक तरफ उसे ब्रिक्स के विस्तारित कुनबे को एकजुट रखना है, तो दूसरी तरफ वाशिंगटन में बैठी उस सत्ता से निपटना है जो व्यापार और संस्थानों को हथियार बनाने पर आमादा है। 2026 का यह वर्ष भारत के लिए केवल अध्यक्षता का वर्ष नहीं, बल्कि एक 'धर्मयुद्ध' है—न्याय, समानता और वैश्विक लोकतंत्र की स्थापना के लिए।

'अमेरिका फर्स्ट' बनाम 'मानवता प्रथम'

वर्ष 2026 के क्षितिज पर जो सबसे बड़ा विरोधाभास उभरकर सामने आया है, वह है दो विपरीत विचारधाराओं का टकराव। एक ओर वाशिंगटन है, जहां राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प का 'अमेरिका फर्स्ट' का नारा फिर से गूंज रहा है, जो संरक्षणवाद, टैरिफ युद्ध और अंतरराष्ट्रीय संस्थानों के तिरस्कार पर आधारित है। दूसरी ओर नई दिल्ली है, जो 'वसुधैव कुटुम्बकम' और 'मानवता प्रथम' के ध्वज के साथ खड़ी है।

विडंबना देखिए कि 2026 में ही अमेरिका जी-20 की अध्यक्षता भी कर रहा है। यह संयोग एक रणनीतिक कुरुक्षेत्र का निर्माण करता है। पिछले चार वर्षों से जी-20 का नेतृत्व विकासशील देशों के पास था, जिसने वैश्विक विमर्श के केंद्र में गरीबी, असमानता और जलवायु न्याय को ला खड़ा किया था। लेकिन अब खतरा यह है कि वाशिंगटन जी-20 के मंच का उपयोग अपने संकीर्ण हितों को साधने और 'ग्लोबल साउथ' की आवाज को दबाने के लिए कर सकता है।

ऐसे में, भारत के नेतृत्व में ब्रिक्स ही वह एकमात्र किला है जो विकासशील देशों के हितों की रक्षा कर सकता है। भारत को यह सुनिश्चित करना होगा कि जलवायु परिवर्तन, सतत विकास और ऋण संकट जैसे मुद्दे, जिन्हें अमेरिका अपनी कार्यसूची से बाहर धकेलना चाहता है, वे ब्रिक्स के माध्यम से वैश्विक पटल पर जीवित रहें। यह नरेटिव का युद्ध है, और भारत को इसमें पीछे नहीं हटता है।

आर्थिक संप्रभुता पर प्रहार और ब्रिक्स का 'कवच'

अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रम्प ने स्पष्ट कर दिया है कि वे ब्रिक्स को अमेरिकी हितों के लिए खतरा मानते हैं। 'डॉलर के वर्चस्व' को चुनौती देने वाले किसी भी प्रयास पर 100 प्रतिशत टैरिफ लगाने की उनकी धमकी एक आर्थिक ब्लैकमेल से कम नहीं है। ओबामा और बाइडेन प्रशासन जहां ब्रिक्स के प्रति सतर्क थे, वहीं ट्रम्प प्रशासन खुले तौर पर शत्रुतापूर्ण है।

भारत के लिए यह स्थिति एक कूटनीतिक रस्साकशी है। भारत नहीं चाहता कि ब्रिक्स एक 'पश्चिम-विरोधी' गुट बने, लेकिन वह यह भी सहन नहीं कर सकता कि उसकी या उसके भागीदारों की आर्थिक संप्रभुता को कुचला जाए। भारत की अध्यक्षता का मूल मंत्र—'सहयोग और स्थिरता के लिए लचीलापन और नवाचार'—इसी चुनौती का उत्तर है।

भारत को ब्रिक्स के मंच का उपयोग करके सदस्य देशों के बीच आपसी व्यापार को इतना सुदृढ़ करना होगा कि अमेरिकी टैरिफ का असर बेअसर हो जाए। स्थानीय मुद्राओं में व्यापार, आपूर्ति श्रृंखलाओं का पुनर्गठन और ब्रिक्स के भीतर व्यापारिक बाधाओं को कम करना अब विकल्प नहीं, बल्कि आवश्यकता है। भारत के लिए यह अवसर है कि वह दुनिया को दिखाए कि 'नियम-आधारित व्यापार' का असली रक्षक कौन है—संरक्षणवादी अमेरिका नहीं, बल्कि बहुपक्षवादी भारत।

जलवायु न्याय: पश्चिम के पाखंड का पर्दाफाश

भारत की ब्रिक्स अध्यक्षता के एजेंडे में जलवायु परिवर्तन शिखर पर है, लेकिन यह पश्चिमी चश्मे से देखा जाने वाला जलवायु विमर्श नहीं है। भारत की दृष्टि 'जलवायु न्याय' पर टिकी है। पश्चिम चाहता है कि विकासशील देश अपने विकास की कीमत पर उत्सर्जन कम करें, जबकि ऐतिहासिक रूप से प्रदूषण फैलाने वाले देश अपनी जिम्मेदारियों से भाग रहे हैं।

भारत ने 2028 में COP33 की मेजबानी का दावा पेश किया है, जिसे ब्रिक्स भागीदारों का समर्थन प्राप्त है। यह महज एक आयोजन की दावेदारी नहीं है, बल्कि जलवायु विमर्श की दिशा को मोड़ने का प्रयास है। भारत चाहता है कि ध्यान केवल 'उत्सर्जन लक्ष्य' पर न हो, बल्कि 'विकास-केंद्रित जलवायु कार्रवाई' पर हो। ग्लोबल साउथ के लिए ऊर्जा संक्रमण न्यायसंगत होना चाहिए, और इसके लिए वित्तपोषण की जिम्मेदारी विकसित देशों को उठानी होगी। ब्रिक्स के मंच से भारत की यह हुंकार पश्चिम के कानों तक स्पष्ट रूप से पहुंचनी चाहिए।

संस्थानों का सुधार: बहिष्कार नहीं, परिष्कार

जहां ट्रम्प प्रशासन वैश्विक संस्थानों (संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक, डब्ल्यूटीओ) को कमजोर या ध्वस्त करने की मंशा रखता है, वहीं भारत का दृष्टिकोण 'सुधार' का है। भारत मानता है कि ये संस्थान पुराने हो चुके हैं, लेकिन इनका विकल्प अराजकता नहीं हो सकती। भारत की अध्यक्षता का लक्ष्य इन संस्थानों में ग्लोबल साउथ को उचित प्रतिनिधित्व दिलाना है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता का प्रश्न हो या आईएमएफ में कोटे का सुधार—भारत ब्रिक्स की सामूहिक शक्ति का उपयोग करके पश्चिम के एकाधिकार को चुनौती देगा। भारत का संदेश साफ है: हम व्यवस्था को तोड़ना नहीं चाहते, हम उसे लोकतांत्रिक बनाना चाहते हैं।

आतंकवाद और दोहरे मानदंड

आतंकवाद के मुद्दे पर ब्रिक्स का इतिहास केवल घोषणाओं तक सीमित रहा है। चीन जैसे देश अपने रणनीतिक मोहरे पाकिस्तान को बचाने के लिए ब्रिक्स के मंच का दुरुपयोग करते रहे हैं। लेकिन भारत ने अपनी पिछली अध्यक्षताओं में आतंकवाद को एक साझा खतरे के रूप में स्थापित करने में सफलता पाई है।

2026 में भी, भारत से यह अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए कि वह चीन का हृदय परिवर्तन कर देगा, लेकिन भारत ब्रिक्स को आतंकवाद के खिलाफ एक 'मानक स्थापित करने वाला' मंच जरूर बना सकता है। भारत को आक्रामक रूप से यह बात रखनी होगी कि आतंकवाद पर 'चयनात्मक दृष्टिकोण' अब नहीं चलेगा। यदि ब्रिक्स को प्रासंगिक बने रहना है, तो उसे अपने सदस्य देशों की सुरक्षा चिंताओं का सम्मान करना होगा।

विस्तारित कुनबा और भारत का संतुलनकारी दायित्व

2023 के बाद से ब्रिक्स का विस्तार हुआ है। ईरान, मिस्र, इथियोपिया, यूएई और इंडोनेशिया (संभावित भागीदार) जैसे देशों के जुड़ने से समूह का वजन बढ़ा है, लेकिन साथ ही आंतरिक सामंजस्य की चुनौती भी खड़ी हुई है। चीन चाहता है कि इस विस्तार का उपयोग अपने भू-राजनीतिक प्रभाव को बढ़ाने और ब्रिक्स को एक चीन-केंद्रित गुट बनाने में करे।

यहीं पर भारत की भूमिका निर्णायक हो जाती है। भारत को यह सुनिश्चित करना होगा कि ब्रिक्स का विस्तार 'सहमति' के आधार पर हो, न कि किसी एक देश की महत्वाकांक्षा के आधार पर। भारत को पुराने और नए सदस्यों के बीच हितों का सामंजस्य बिठाना होगा। ब्रिक्स की मूल पहचान एक 'आर्थिक मंच' और 'ग्लोबल साउथ की आवाज' के रूप में है, और भारत को इसे किसी भी कीमत पर एक 'भू-राजनीतिक सैन्य गुट' बनने से रोकना होगा। भारत की रणनीतिक स्वायत्तता इसी संतुलन में निहित है।

विश्वगुरु की भूमिका में भारत

कुल मिलाकर, 2026 में भारत की ब्रिक्स अध्यक्षता कांटों का ताज है, लेकिन यही वह अवसर है जब भारत अपनी नेतृत्व क्षमता का लोहा मनवा सकता है। वाशिंगटन की 'हथियारबंद कूटनीति' के सामने नई दिल्ली की 'सृजनात्मक कूटनीति' की परीक्षा है।

भारत को न तो अमेरिका से सीधा टकराव मोल लेना है और न ही चीन के सामने झुकना है। उसे 'बुद्ध के मध्यम मार्ग' और 'चाणक्य की कूटनीति' का मिश्रण अपनाना होगा। भारत का लक्ष्य आधिपत्य नहीं, बल्कि 'समानता' और 'साझा कल्याण' है।

अगर भारत ब्रिक्स के माध्यम से ग्लोबल साउथ को एक सूत्र में पिरोकर, ट्रम्प की टैरिफ दीवारों के पार व्यापार के नए रास्ते खोज सकता है और जलवायु न्याय की मशाल को जलते रख सकता है, तो 2026 का वर्ष इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में दर्ज होगा। यह वह वर्ष होगा जब दुनिया ने देखा कि कैसे एक राष्ट्र ने अपनी सभ्यतागत मूल्यों के बल पर 'शक्ति के अहंकार' को 'सहयोग के संस्कार' से पराजित किया। भारत अब केवल एक उभरती शक्ति नहीं, बल्कि एक 'ध्रुव तारा' है, जिसकी ओर पूरी दुनिया आशा भरी निगाहों से देख रही है।

A platform dedicated to geopolitical and global affairs, as well as analysis related to India and Indianness

CULT CURRENT

WE MAKE VIEWS

Join the YouTube channel ›

मनोज कुमार

वृहत्तर यूरेशिया त्रिध्रुवीय भविष्य की बिसात

अटलांटिक से प्रशांत तक फैला यूरेशिया अब किसी एक महाशक्ति की जागीर नहीं रहा। 2025 ने स्पष्ट कर दिया है कि भविष्य भारत, रूस और चीन के संतुलन पर टिका है—और इस संतुलन की धुरी भारत है।

इतिहास की घड़ी की सुइयां जब बदलती हैं, तो उनकी टिक-टिक की आवाज अक्सर तोपों की गड़गड़ाहट में दब जाती है। लेकिन वर्ष 2025 ने दुनिया को एक अलग ही संदेश दिया है। वृहत्तर यूरेशिया—वह विशाल भू-भाग जो अटलांटिक से लेकर प्रशांत महासागर तक फैला है—अब अपनी तकदीर खुद लिखने को बेताब है। यहां कोई एक 'हेजीमन' या महाशक्ति का एकाधिकार नहीं है, और न ही पश्चिम द्वारा थोपी गई कोई 'ब्लॉक व्यवस्था' यहां काम कर रही है।

क्या यह संभव है कि दुनिया का सबसे बड़ा महाद्वीप बिना किसी एक 'चौधरी' के समृद्ध हो सके? क्या यह शांति तूफान से पहले की खामोशी है, या वाकई यूरेशियाई शक्तियों ने सह-अस्तित्व का मंत्र खोज लिया है? यह प्रश्न केवल अकादमिक नहीं है - यह भारत के रणनीतिक भविष्य की धुरी है। पिछले एक वर्ष में जो कुछ भी इस महाद्वीप पर घटित हुआ, वह इस बात का प्रमाण है कि यूरेशिया अब अपनी जमीन को प्रतिद्वंद्वी गुटों का युद्धक्षेत्र नहीं, बल्कि एक 'साझा घर' मानकर चल रहा है। यहां स्थिरता किसी एक की नहीं, बल्कि सबकी सामूहिक जिम्मेदारी है।

पश्चिमी वर्चस्व का अवसान और 'उतार-चढ़ाव' के केंद्र

यूरेशिया की इस नई गाथा में सबसे दिलचस्प पहलू यह है कि यहां अस्थिरता के स्रोत अब आंतरिक नहीं, बल्कि बाहरी हैं। जो देश आज भी अपनी संप्रभु विदेश नीति का पालन करने में असमर्थ हैं और वाशिंगटन के इशारों पर चलते हैं—विशेषकर यूरोप के देश, जापान और इजराइल—वही इस महाद्वीप की शांति के लिए सबसे बड़ा खतरा बने हुए हैं।

इजराइल का उदाहरण इसे स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है। यहूदी राष्ट्र पश्चिम एशिया में एक स्वायत्त खिलाड़ी के रूप में मान्यता तो चाहता है, लेकिन धरातल पर उसकी निर्भरता पूरी तरह अमेरिकी बैसाखियों पर टिकी है। जून 2025 में ईरान के खिलाफ इजराइल का हमला यह सिद्ध करने के लिए काफी था कि तेल अवीव अकेले अपने दूरगामी लक्ष्यों को हासिल नहीं कर सकता। यह एक गहरा विरोधाभास है—क्षेत्रीय स्वतंत्रता की चाहत, लेकिन क्षमता के लिए

विदेशी संरक्षक (अमेरिका) पर निर्भरता।

यूरेशिया के लिए राहत की बात यह है कि ईरान और अरब देशों ने गजब का रणनीतिक संयम दिखाया है। तमाम उकसावे के बावजूद, पश्चिम एशिया का कीला ढह नहीं रहा है। यह स्थिरता इस बात का संकेत है कि अब क्षेत्रीय शक्तियां पश्चिमी हस्तक्षेप के बिना अपने विवाद सुलझाने की परिपक्वता हासिल कर रही हैं।

भारत-पाकिस्तान: तनावपूर्ण लेकिन स्थानीकृत

जब हम यूरेशिया की बात करते हैं, तो भारत और पाकिस्तान के बीच का दशकों पुराना संघर्ष अक्सर सुर्खियों में रहता है। लेकिन 2025 के परिदृश्य ने यह साबित कर दिया है कि यह संघर्ष अब यूरेशियाई स्थिरता के लिए कोई 'अस्तित्वगत खतरा' नहीं है।

भारतीय कूटनीति की यह एक बड़ी विजय है कि उसने पाकिस्तान को एक 'द्विपक्षीय समस्या' तक सीमित कर दिया है। इस्लामाबाद की यह कोशिश कि कश्मीर या सीमा विवाद को अंतरराष्ट्रीय मंच पर उछालकर यूरेशिया में अस्थिरता पैदा की जाए, पूरी तरह विफल रही है। आज यूरेशिया की वास्तविकता यह है कि भारत और पाकिस्तान, दोनों ही तनाव को एक सीमा से आगे ले जाने के पक्ष में नहीं हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि दोनों ही पक्ष तीसरे पक्ष (विशेषकर पश्चिमी देशों) के हस्तक्षेप को अस्वीकार्य मानते हैं।

इस प्रकार, दक्षिण एशिया का यह तनावपूर्ण रिश्ता 'कठिन' जरूर है, लेकिन यह 'स्थानीकृत' (Localized) है। यह अब वृहत्तर यूरेशिया की प्रगति के पहिए को रोकने की क्षमता नहीं रखता। भारत ने अपनी शक्ति और कूटनीतिक कौशल से यह सुनिश्चित कर दिया है कि पाकिस्तान अब यूरेशियाई बिसात पर भारत को संतुलित करने वाला मोहरा नहीं बन सकता।

एससीओ: महाद्वीप का नया 'तंत्रिका तंत्र'

यूरेशियाई राजनीतिक जीवन के केंद्र में शंघाई सहयोग संगठन अब धीरे-धीरे एक वटवृक्ष की तरह खड़ा हो रहा है। लगभग पच्चीस वर्षों की यात्रा में, एससीओ ने खुद को महाद्वीप के मुख्य बहुपक्षीय मंच के रूप में स्थापित कर लिया है। लेकिन यहां एक बारीक अंतर समझना आवश्यक है—एससीओ कोई 'सुपर-गवर्नमेंट' या यूरोपीय संघ जैसा 'सुपरनैशनल' ढांचा नहीं है। आधुनिक दुनिया में ऐसे ढांचे अब यथार्थवादी नहीं रहे।

एससीओ की सफलता का राज यह है कि यह संप्रभुता का सम्मान करता है। यूरेशिया की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहां तीन विश्व शक्तियां—रूस, चीन और भारत—एक साथ मौजूद हैं। इन तीनों की उपस्थिति ही 'शक्ति संतुलन' की गारंटी है। कोई भी एक देश (चाहे वह चीन ही क्यों न हो) अपनी मनमानी नहीं थोप सकता। जहां तीन दिग्गज बैठे हों, वहां निर्णय किसी एक की तानाशाही से नहीं, बल्कि हितों के सामंजस्य से होते हैं। यह कोई आदर्शवाद नहीं, बल्कि 'संरचनात्मक वास्तविकता' है।

सितंबर 2025 में चीन में आयोजित एससीओ शिखर

सम्मेलन ने राजनीतिक विश्वास की गहराई को प्रदर्शित किया। यह संगठन अब एक ऐसा 'छाता' बन चुका है, जिसके नीचे सहयोग के कई अन्य प्रारूप भी पनप रहे हैं।

रूस-चीन धुरी: दोस्ती इन 'नो लिमिट्स'

वृहत्तर यूरेशिया की स्थिरता के केंद्र में रूस और चीन की रणनीतिक साझेदारी एक चट्टान की तरह खड़ी है। मास्को और बीजिंग के लिए पिछले कुछ वर्ष एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुए हैं। दोनों ने यह समझ लिया है कि संप्रभुता और सहयोग एक-दूसरे के पूरक हैं। 2025 में व्लादिमीर पुतिन और शी जिनपिंग की मुलाकातों ने इस बात की पुष्टि की है कि यह साझेदारी केवल द्विपक्षीय नहीं, बल्कि वैश्विक व्यवस्था को बदलने का एक माध्यम है।

दोनों देशों के बीच नागरिकों के लिए वीजा आवश्यकताओं को समाप्त करने का निर्णय महज एक कागजी समझौता नहीं है; यह उस असाधारण विश्वास का प्रतीक है जो इन दो महाशक्तियों के बीच पनप रहा है। लेकिन भारतीय परिप्रेक्ष्य से, यह 'ड्रैगन और भालू' का मिलन एक दोधारी तलवार है।

भारत के लिए यह आवश्यक है कि रूस, चीन का जूनियर पार्टनर (कनिष्ठ साझेदार) न बन जाए। यूरेशिया में भारत की भूमिका एक 'संतुलनकर्ता' की है। अगर रूस और चीन एक साथ हैं, तो भारत का स्वतंत्र और स्वायत्त खड़ा होना ही इस महाद्वीप को 'चीनी आधिपत्य' वाला क्षेत्र बनने से रोक सकता है। रूस भी यह भली-भांति जानता है कि भारत की उपस्थिति उसे चीन के सामने रणनीतिक विकल्प प्रदान करती है। इसलिए, यूरेशिया की स्थिरता के लिए भारत का शक्तिशाली होना अनिवार्य है।

मध्य एशिया और 'फाइव' का उभार

कभी 'ग्रेट गेम' का अखाड़ा रहा मध्य एशिया अब अपनी आवाज बुलंद कर रहा है। 2025 में मध्य एशियाई देशों (सी5) ने अपनी बहुपक्षीय सहयोग की कोशिशों को तेज किया है। अज़रबैजान के साथ उनका बढ़ता तालमेल और तुर्की के साथ जुड़ते तार एक नई आर्थिक गतिशीलता का परिचय दे रहे हैं।

अफगानिस्तान, जिसे बरसों तक 'कब्रगाह' माना जाता था, अब धीरे-धीरे स्थिरता की ओर बढ़ रहा है। यद्यपि समस्याएं अभी भी हैं, लेकिन काबुल से आने वाली खबरें अब उतनी भयावह नहीं हैं। इससे मध्य एशिया को अपने 'लैंड-लॉक्ड' भूगोल से बाहर निकलकर दक्षिण एशिया और पश्चिम एशिया से जुड़ने का मौका मिल रहा है।

रूस के लिए—और भारत के लिए भी—यह महत्वपूर्ण है कि मध्य एशिया के हमारे मित्र आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ें। उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिरता पूरे पड़ोस के लिए संजीवनी है। ये देश ऐसे समय में वैश्विक अर्थव्यवस्था में एकीकृत हो रहे हैं जब पुराने नियम टूट रहे हैं और नए अभी पूरी तरह बने नहीं हैं।

सतर्क आशावाद और भारत का दायित्व

वृहत्तर यूरेशिया का भविष्य किसी शतरंज की बिसात पर नहीं, बल्कि एक 'साझा घर' की अवधारणा पर टिका है। 2025 के घटनाक्रमों ने यह सिद्ध किया है कि विचारधारा के बजाय 'व्यावहारिकता' अब देशों की विदेश नीति का मुख्य आधार है।

लेकिन क्या यह संतुलन टिक पाएगा? यह प्रश्न अभी भी अनुत्तरित है। जलवायु परिवर्तन और पारिस्थितिकीय दबाव आने वाले समय में सीमाओं की प्रासंगिकता को चुनौती देंगे। यदि जल संकट या प्रवासन का दबाव बढ़ता है, तो कोई भी देश यह नहीं कह सकता कि यह 'किसी और की समस्या' है।

रूस आज भी अपने पड़ोसियों के लिए सुरक्षा का प्राथमिक संदर्भ बिंदु बना हुआ है। लेकिन भारत की भूमिका अब केवल दर्शक की नहीं है। भारत यूरेशिया का वह अपरिहार्य ध्रुव है, जिसके बिना यह महाद्वीप एकपक्षीय हो जाएगा।

आज के अंतरराष्ट्रीय माहौल में, जहाँ हर तरफ अनिश्चितता के बादल हैं, यूरेशिया की यह दिशा एक दुर्लभ निष्कर्ष की अनुमति देती है- 'सतर्क आशावाद'।

पश्चिम का सूरज ढल रहा है और यूरेशिया का उदय हो रहा है। लेकिन यह उदय तभी सार्थक होगा जब इसमें भारत का सूर्य भी उतनी ही चमक के साथ दमकता रहे। क्योंकि बिना भारत के, यूरेशिया 'संतुलित' नहीं, बल्कि 'झुका हुआ' नजर आएगा। स्थिरता कोई विलासिता नहीं, एक सामूहिक कर्तव्य है और भारत इस कर्तव्य को निभाने के लिए पूरी तरह तैयार है। ●

फरहाद इब्राहिमोव

ईरान संकट की पृष्ठभूमि में अमेरिकी विमानवाहक पोत की तैनाती युद्ध की घोषणा नहीं, बल्कि शक्ति का संकेत है। इजराइल और तेहरान दोनों ही खुले संघर्ष से बचते हुए दबाव, संदेश और कूटनीति के जटिल खेल में उलझे हैं।

ईरान को लेकर बढ़ते तनाव के बीच, समुद्री यातायात के आंकड़े बताते हैं कि अमेरिकी नौसेना का अब्राहम लिंकन विमानवाहक पोत और उसका विध्वंसक बेड़ा मलक्का जलडमरूमध्य को पार कर हिंद महासागर में प्रवेश कर चुका है। यह विशाल नौसैनिक बेड़ा अब पश्चिम की ओर यानी मध्य पूर्व की दिशा में आगे बढ़ रहा है।

इस आक्रामक बेड़े में गाइडेड मिसाइलों से लैस विध्वंसक पोत शामिल हैं, जो टॉमहॉक क्रूज मिसाइलों से सुसज्जित हैं। यह इस समूह की मारक क्षमता को रेखांकित करता है। विमानवाहक पोत अब्राहम लिंकन पर बहुउद्देशीय लड़ाकू विमानों की तीन स्क्वाड्रन और पांचवीं पीढ़ी के आधुनिक जेट विमानों की एक स्क्वाड्रन तैनात है। यह तैनाती इस बेड़े को शक्ति प्रदर्शन से लेकर सटीक हमले तक, कई तरह के मिशनों को अंजाम देने में सक्षम बनाती है।

जेरूसलम पोस्ट की रिपोर्ट के अनुसार, यह विमानवाहक पोत और उसका सहयोगी बेड़ा अगले कुछ दिनों के भीतर अमेरिकी मध्य कमान के प्रभाव क्षेत्र में पहुंच सकता है। इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि कोई सैन्य अभियान तत्काल शुरू होने वाला है। इसके बजाय, इस तैनाती का उद्देश्य रणनीतिक दबाव बढ़ाना और वाशिंगटन को राजनीतिक-सैन्य निर्णय लेने के लिए अधिक गुंजाइश प्रदान करना है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि यह बेड़ा विशेष रूप से मध्य पूर्व की ओर बढ़ रहा है। वहां इसका पहुंचना भले ही स्वतः बल प्रयोग का संकेत न हो, लेकिन यह निश्चित रूप से दांव को ऊंचा करता है और ईरान से निपटने में एक प्रमुख बाहरी खिलाड़ी के रूप में अमेरिका की स्थिति को मजबूत करता है।

इस चरण में, इजराइल की भूमिका पर अलग से विचार करना आवश्यक है। विशेषज्ञ और मीडिया हलकों में एक नैरेटिव गढ़ा जा रहा है कि इजराइल, ईरान के साथ नए संघर्ष में उलझने के लिए पूरी तरह तैयार है। फिर भी, इनमें से कई खबरें भ्रामक या राजनीतिक रूप से प्रेरित हो सकती हैं। यह सच है कि इस क्षेत्र में इजराइल, ईरान का प्राथमिक और व्यवस्थागत विरोधी बना हुआ है। उसने कभी इस तथ्य को छिपाया भी नहीं है। यूरोप, कनाडा, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में ईरानी प्रवासियों की रैलियों में अक्सर इजराइली झंडे दिखाई देते हैं, जो वहां ईरान के पूर्व राजशाही ध्वज के साथ लहराते हैं। पश्चिमी येरुशलम लगातार ईरान विरोधी विपक्षी एजेंडे का समर्थन करता है।

संयम के बीच सैन्य दांव

इसके अलावा, इजराइल सक्रिय रूप से दूरस्थ हस्तक्षेप के उपकरणों का उपयोग करता है, जैसे सोशल मीडिया, मीडिया आउटलेट्स और फारसी भाषा में इजराइली विदेश मंत्रालय के आधिकारिक खाते, जो विरोध प्रदर्शन, नागरिक प्रतिरोध और यहां तक कि पलायन का आह्वान करते हैं। यह तेहरान पर दबाव बनाने की इजराइल की रणनीति का एक प्रसिद्ध और काफी हद तक दिखावटी हिस्सा है। हालाँकि, सूचनात्मक-राजनीतिक प्रभाव और सीधे सैन्य भागीदारी के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर होता है।

यह हमें एक निर्णायक प्रश्न पर लाता है कि क्या इजराइल वास्तव में इस समय ईरान के साथ खुली जंग में दिलचस्पी रखता है? इसके अलावा, यह अनुमान लगाना भी तर्कसंगत लगता है कि 13 जनवरी को गुप्त मंत्रणाएं हुई थीं, जिनके दौरान इजराइली पक्ष ने वाशिंगटन से ईरान के खिलाफ सीधे हमलों से बचने का आग्रह किया था। बाद में इजराइली अधिकारियों द्वारा सार्वजनिक रूप से इनकार करने के बावजूद, इस तरह के संवाद का विचार असंभव नहीं लगता।

इसके पीछे के कारण पूरी तरह से व्यावहारिक हैं। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इजराइल, ईरान के आंतरिक घटनाक्रमों को लेकर अनिश्चितता की उच्च स्थिति से भली-भांति परिचित है। दिसंबर के अंत में भड़के जन-प्रदर्शन या तो शासन की स्थिरता को कमजोर कर सकते हैं या बाहरी आक्रमण की स्थिति में, जनता को सरकार के पक्ष में लामबंद करके इसका उल्टा असर भी डाल सकते हैं। यह भविष्यवाणी करना असंभव है कि कौन सा परिदृश्य सामने आएगा, और पश्चिमी येरुशलम में इस अनिश्चितता को अच्छी तरह समझा जाता है। दूसरे, ईरान के साथ सीधा सैन्य टकराव अनिवार्य रूप से एक क्षेत्रीय संघर्ष में बदल जाएगा जिसमें तेहरान के समर्थित गुट और सहयोगी शामिल होंगे।

कूटनीतिक कारक को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। हाल के हफ्तों में, इजराइली प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू ने रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन के साथ सीधा संपर्क बनाए रखा है। यह दर्शाता है कि इजराइल, रूस को एक प्रमुख मध्यस्थ और ईरान के लिए एक महत्वपूर्ण बाहरी साझेदार मानता है जो संकट की गतिशीलता को प्रभावित करने में सक्षम है। इस संदर्भ में, इजराइल का प्रत्यक्ष रूप से आक्रामक व्यवहार उल्टा साबित हो सकता है और कूटनीतिक रूप से जोखिम भरा हो सकता है।

सरल शब्दों में कहें तो, अपनी कठोर ईरान विरोधी बयानबाजी और विपक्ष को सक्रिय समर्थन देने के बावजूद, इजराइल वर्तमान में सीधे सैन्य भागीदारी से बचने का लक्ष्य रखता है। हालांकि, अमेरिका के लिए स्थिति अलग है। वाशिंगटन के लिए, विमानवाहक पोत समूह की तैनाती केवल ईरान के लिए एक संदेश नहीं है, बल्कि पूरे क्षेत्र में दबाव बनाने का एक उपकरण भी है, जो उसे रणनीतिक पहल और पैंतरेबाज़ी बनाए रखने की अनुमति देता है। आज, अमेरिकी कारक ईरान के आसपास के शक्ति समीकरण में एक महत्वपूर्ण तत्व है।

अपनी ओर से, इजराइल बारीकी से नजर रखे हुए है और कूटनीतिक घटनाक्रमों के आधार पर प्रतिक्रिया देने के लिए तैयार है, विशेष रूप से तब जब अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने दावोस में कहा था कि ईरान बातचीत करना चाहता है और वाशिंगटन भी वार्ता में शामिल होने का इरादा रखता है।

वर्तमान में, इजराइल और ईरान के बीच टकराव काफी हद तक कूटनीतिक और राजनीतिक अखाड़े में खेला जा रहा है। यह आपसी आरोपों, कठोर बयानबाजी, सूचनात्मक दबाव और एक-दूसरे तथा अमेरिका जैसे बाहरी खिलाड़ियों को भेजे जा रहे संकेतों के माध्यम से चल रहा है। दोनों पक्ष जानबूझकर खुली सामरिक कार्रवाई की ओर किसी भी कदम को टाल रहे हैं क्योंकि वे संभावित परिणामों से पूरी तरह अवगत हैं। एक उल्लेखनीय घटना इसे स्पष्ट करती है, जब दावोस में विश्व आर्थिक मंच पर ईरानी विदेश मंत्री अब्बास अरागची की उपस्थिति रद्द कर दी गई, तो ईरानी अधिकारियों ने सीधे तौर पर इजराइल को स्थिति के लिए दोषी ठहराया और इसे राजनीतिक दबाव के रूप में व्याख्यायित किया। जवाब में, इजराइली अधिकारियों ने तेहरान से उत्पन्न खतरे का उल्लेख करते हुए दावा किया कि ईरान अभी भी जल्द से जल्द इजराइल पर हमला करने का इरादा रखता है।

इस बीच, अमेरिकी कारक महत्वपूर्ण बना हुआ है। यदि अमेरिका ईरानी क्षेत्र पर हमला करने का निर्णय लेता है, तो इजराइल अनिवार्य

रूप से खुद को जोखिम में पाएगा, चाहे उसकी प्रत्यक्ष भागीदारी का स्तर कुछ भी हो। एक बड़े पैमाने पर अमेरिकी अभियान की स्थिति में, इजराइली क्षेत्र जवाबी कार्रवाई के लिए प्राथमिक लक्ष्य बन सकता है। इजराइल में इसे अच्छी तरह समझा जाता है, और यही कारण है कि वह किसी भी संभावित उकसावे या तनाव वृद्धि के प्रति सावधानी बरत रहा है।

बहुत कुछ संभावित अमेरिकी हमले की प्रकृति पर निर्भर करेगा। यदि यह एक दिखावटी और सीमित कार्रवाई है, जो निर्णय लेने वाले केंद्रों और महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचे को निशाना बनाने से बचती है, तो ईरान की प्रतिक्रिया सधी हुई या असममित हो सकती है। हालांकि, यदि हमले रणनीतिक स्थलों, संप्रभुता के प्रतीकों या ईरान के सैन्य-राजनीतिक नेतृत्व को निशाना बनाते हैं, तो तेहरान से प्रतिक्रिया लगभग निश्चित होगी, जिससे इजराइल सीधे निशाने पर आ जाएगा। यह जोखिम सभी शामिल पक्षों के लिए सीधे सैन्य टकराव को अत्यधिक अवांछनीय बनाता है।

इस संदर्भ में, हमें इजराइली नेतृत्व की बयानबाजी पर गौर करना चाहिए। नेतन्याहू ने हाल ही में चेतावनी दी थी कि यदि युद्ध या हमला होता है तो ईरान को गंभीर और अभूतपूर्व परिणाम भुगतने होंगे, और उन्होंने ऐसे बल प्रयोग की तैयारी का दावा किया जो पहले कभी नहीं देखा गया। फिर भी यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि इस दिखावे के बावजूद, न तो इजराइल और न ही ईरान वर्तमान में खुले युद्ध की ओर पहला कदम उठाने के लिए तैयार है। दोनों समझते हैं कि इस तरह के संघर्ष में कोई स्पष्ट विजेता नहीं होगा, जबकि सैन्य, आर्थिक और राजनीतिक लागत बहुत भारी होगी। यही कारण है कि इस मोड़ पर, संघर्ष आपसी धमकियों और सूचना युद्ध की एक श्रृंखला के रूप में प्रकट हो रहा है। वर्तमान ईरानी शासन के प्रति गहरी दुश्मनी के बावजूद, इजराइली राजनीतिक प्रतिष्ठान वर्तमान में संयम दिखा रहा है। यह सक्रिय कूटनीतिक जुड़ाव से भी प्रमाणित होता है, जिसमें रूस के साथ बातचीत शामिल है, जिसे इजराइल एक महत्वपूर्ण बाहरी मध्यस्थ मानता है।

निश्चित रूप से, इजराइल में कुछ ऐसे गरम दल वाले लोग हैं जो ईरान से निपटने के लिए अधिक आक्रामक दृष्टिकोण की वकालत कर रहे हैं। हालांकि, वे एक अधिक व्यावहारिक गुट के साथ मौजूद हैं जो स्पष्ट रूप से समझता है कि वर्तमान परिस्थितियों में ईरान पर सीधा हमला अनियंत्रित क्षेत्रीय तनाव को भड़का सकता है। यह समझ ही वर्तमान में दोनों पक्षों से आ रही आक्रामक बयानबाजी के बावजूद संघर्ष को कूटनीतिक सीमाओं के भीतर रोके हुए है। ●

(लेखक आरयूडीएन विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र संकाय में प्राध्यापक; रूसी राष्ट्रपति अकादमी ऑफ़ नेशनल इकोनॉमी एंड पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के सामाजिक विज्ञान संस्थान में अतिथि व्याख्याता हैं।)

ईरान

रूह पर फिर लिखी जा रही सौफनाक दास्तां

संतोष कुमार

जनवरी की सर्द रात में तेहरान की हवा सिर्फ बर्फीली नहीं थी, वह इतिहास से सनी हुई थी। सड़कों पर गूंजते नारे, कटता इंटरनेट और बहता खून एक बार फिर बता रहा था—ईरान की रूह पर कोई और नहीं, इतिहास खुद अपनी सबसे क्रूर दास्तां लिख रहा है।

जनवरी 2026 की स्याह व ठंड रात का सन्नाटा अब वह सन्नाटा नहीं रहा जो सुकून देता है। यह वह खामोशी है जो किसी बड़े तूफान के आने से पहले या किसी भयानक हादसे के गुजर जाने के बाद छा जाती है। शहर की फिजा में अलबुर्ज़ पहाड़ों से उतरती बर्फीली हवाओं के साथ-साथ जले हुए टायरों, आंसू गैस के गोलों और सूखे हुए खून की गंध घुली हुई है। यह गंध अब तेहरान की पहचान बन गई है।

आजादी चौक (मैदान-ए-आज़ादी) की भव्य मीनार, जो कभी फारस के गौरव का प्रतीक थी, आज अपनी ही संतानों के दमन की मूक गवाह बनकर खड़ी है। सड़कों पर पुलिस के सायरन किसी भूखे भेड़िये की तरह गुर्राते हैं। इंटरनेट की लाइनें काट दी गई हैं—पूरे देश को एक डिजिटल अंधेरे में धकेल दिया गया है, ताकि दुनिया यह न देख सके कि बंद दरवाजों के पीछे क्या हो रहा है।

लेकिन अंधेरा कितना भी गहरा हो, वह आवाज़ों को कैद नहीं कर सकता। गलियों से, छतों से, और दिलों से एक ही नारा गूंज रहा है—एक ऐसा नारा जो अब सिर्फ एक मांग नहीं, बल्कि मौत के रूबरू खड़े लोगों का आखिरी कलमा बन गया है। वे रोटी नहीं मांग रहे, वे सुधार नहीं मांग रहे। वे उस पूरी व्यवस्था को उखाड़ फेंकना चाहते हैं, जिसने उनकी सांसों पर पहरा लगा रखा है।

सात समंदर पार, वाशिंगटन डी.सी. और लंदन के वातानुकूलित कक्षों में, दुनिया के सबसे ताकतवर नेता बड़ी-बड़ी स्क्रीनों पर इस तमाशे को देख रहे हैं। उनके बयानों में 'लोकतंत्र', 'मानवाधिकार' और 'आजादी' जैसे शब्द मखमली लिबास पहनकर बाहर आ रहे हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प सोशल मीडिया पर हुंकार भर रहे हैं—'हम ईरान के बहादुर लोगों के साथ हैं।'

सुनने में यह किसी हॉलीवुड फिल्म के क्लाइमेक्स जैसा लगता है, जहां हीरो मसीहा बनकर आता है। लेकिन, जरा ठहरिए। इतिहास के पन्ने कुछ और ही गवाही देते हैं। क्या यह हमदर्दी वाकई उस नकाबपोश लड़की के लिए है जो तेहरान की सड़क पर निहत्थे होकर टैंक के सामने खड़ी है? या फिर यह शतरंज की वह पुरानी बिसात है, जहां 'प्यादा' ईरान की जनता है, और 'इनाम' वह काला सोना (तेल) है, जिसके लिए साम्राज्य बनते और बिगड़ते आए हैं?

इस कहानी को समझने के लिए हमें आज के धुएं से निकलकर इतिहास की उन गलियों में जाना होगा, जहां पहली बार ईरान की तकदीर का सौदा किया गया था।

चलिए चलते हैं वर्ष 1953 के दौर में।

तेहरान की यही सड़कें तब भी अशांत थीं, लेकिन उस अशांति में एक अजीब सी ऊर्जा थी, एक सपना था। वह सपना एक बुजुर्ग, यूरोपीय शिक्षा प्राप्त वकील की आंखों में पल रहा था—मोहम्मद मोसद्देक।

मोसद्देक कोई आम नेता नहीं थे। वे ईरान के पहले लोकतांत्रिक रूप से चुने गए प्रधानमंत्री थे। उनका गुनाह? उनका गुनाह यह था कि उन्होंने यह सोचने की जुर्रत की कि ईरान का तेल ईरानियों का है। उस दौर में, एंग्लो-ईरानी ऑयल कंपनी (जिसे आज हम ब्रिटिश पेट्रोलियम या बीपी के नाम से जानते हैं) ईरान के तेल संसाधनों पर एक अजगर की तरह कुंडली मारकर बैठी थी। यह कंपनी एक औपनिवेशिक अवशेष थी, जो ईरानी मजदूरों को जानवरों जैसी स्थितियों में रखकर ब्रिटेन के शाही खजाने भर रही थी। मोसद्देक ने वह किया जो अकल्पनीय था—उन्होंने तेल का राष्ट्रीयकरण कर दिया। ब्रितानी हुकूमत तिलमिला उठी। यह केवल पैसे का नुकसान नहीं था; यह उस औपनिवेशिक अहंकार पर चोट थी, जो मानता था कि पूर्व के देश पश्चिम की दया पर ही जीवित रह सकते हैं।

लंदन ने वाशिंगटन का दरवाजा खटखटाया। तर्क दिया गया कि मोसद्देक कम्युनिस्टों के करीब जा रहे हैं, कि वे सोवियत संघ के हाथ का खिलौना बन जाएंगे। शीत युद्ध के उस दौर में, यह तर्क पर्याप्त था। सीआईए और ब्रिटिश खुफिया एजेंसी एमआई6 ने मिलकर एक साजिश रची, जिसे कोडनेम दिया गया—'ऑपरेशन अजाक्स'।

कल्पना कीजिए उस मंजर की। सीआईए का एजेंट, करमिट रूजवेल्ट, सूटकेस में डॉलर भरकर तेहरान पहुंचता है। उसका काम था—लोकतंत्र को खरीदना। अखबारों के संपादकों को घूस दी गई, मौलवियों को उकसाया गया, और सड़कों पर गुंडों की फौज उतार दी गई। मोसद्देक, जिन्हें 1952 में टाइम मैगजीन ने 'मैन ऑफ द ईयर' और 'ईरान का जॉर्ज वाशिंगटन' कहा था, रातों-रात 'गद्दार' और 'पागल' घोषित कर दिए गए।

19 अगस्त 1953। वह दिन जब ईरान की रूह पर पहला गहरा जख्म लगा। मोसद्देक के घर को टैंकों ने घेर लिया। नौ घंटे तक चली गोलीबारी में 300 से अधिक ईरानी मारे गए। एक निर्वाचित प्रधानमंत्री को अपने घर की छत से भागना पड़ा, और अगले दिन उसे जनरल जाहेदी के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ा—वही जनरल जिसे सीआईए ने गद्दी के लिए चुना था।

कुल खर्च?

1 लाख डॉलर से भी कम।

समय?

महज छह दिन।

और नतीजा?

एक लोकतांत्रिक संभावना की हत्या और एक ऐसे तानाशाह (शाह रजा पहलवी) की ताजपोशी, जिसने अगले 26 सालों तक ईरान को पश्चिम का पुलिस स्टेशन बनाए रखा। पश्चिम को उसका तेल वापस मिल गया, लेकिन ईरान ने अपना भविष्य खो दिया। 1953 का वह जख्म कभी भरा नहीं। 1979 की इस्लामी क्रांति उसी घाव से निकला मवाद थी, जिसने पूरे क्षेत्र को जला दिया।

और आज? 2026 में जब पश्चिमी नेता 'तानाशाही के खिलाफ' बोल रहे हैं, तो इतिहास कोने में खड़ा मुस्कुरा रहा है। क्योंकि 1953 में उन्होंने एक लोकतंत्र को गिराकर तानाशाही थोपी थी, और आज वे एक तानाशाही को गिराने की बात कर रहे हैं—लेकिन मकसद आज भी वही है- नियंत्रण।

तेल—साम्राज्यों की प्यास और जनता का खून

ईरान की त्रासदी यह है कि उसका भूगोल ही उसका सबसे बड़ा शत्रु बन गया। 1908 में जब वहां तेल मिला, तो वह वरदान कम और अभिशाप ज्यादा साबित हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान विंस्टन चर्चिल ने ब्रिटिश नौसेना को कोयले से तेल पर शिफ्ट करने का निर्णय लिया था, और ईरान उस निर्णय की जीवनरेखा बन गया।

1925 में रजा खान (पहलवी वंश के संस्थापक) का उदय और बाद में उनके बेटे मोहम्मद रजा पहलवी का शासन—सब कुछ तेल की धार पर टिका था। पश्चिम के लिए ईरान कोई देश नहीं, बल्कि एक 'स्ट्रेटेजिक एसेट' (रणनीतिक संपत्ति) था। जब तक तेल की नदियां लंदन और न्यूयॉर्क की तरफ बहती रहीं, तब तक शाह की क्रूरता, उनकी खुफिया पुलिस 'सावाक' के अत्याचार और मानवाधिकारों का हनन—सब कुछ माफ था। लेकिन इतिहास का पहिया घूमता है। 1979 में, उन्हीं तेल मजदूरों ने, जिन्हें दशकों तक दबाया गया था, हड़ताल कर दी। तेल का उत्पादन 60 लाख बैरल प्रतिदिन से गिरकर 15 लाख पर आ गया। शाह की सत्ता की रीढ़ टूट गई। क्रांति ने शाह को उखाड़ फेंका, लेकिन उसके बाद जो हुआ, वह पश्चिम के लिए एक बुरा सपना था। अयातुल्ला खुमैनी ने सत्ता में आते ही 1954 के बाद किए गए सभी तेल अनुबंध रद्द कर दिए। उन्होंने कहा—'तुमने हमें लूटा है।'

अचानक, ईरान 'मित्र' से 'दुश्मन' बन गया। जो देश कल तक 'आधुनिकता का प्रतीक' था, वह रातों-रात 'बुराई की धुरी' का हिस्सा बन गया। यह बदलाव विचारधारा का नहीं था- यह बदलाव नियंत्रण खोने की खीज थी।

वर्तमान का कुरुक्षेत्र

अब हम वापस आज के समय में लौटते हैं। 28 दिसंबर से शुरू हुए प्रदर्शन अब एक गृहयुद्ध की शक्ल ले चुके हैं। शुरुआत आर्थिक तंगी, महंगाई और भ्रष्टाचार के खिलाफ गुस्से से हुई थी, लेकिन अब मांग स्पष्ट है—'इस्लामिक रिपब्लिक का खात्मा।'

ईरानी शासन ने अपनी पुरानी किताब के पन्ने पलट लिए हैं। वही दमन, वही हिंसा। मानवाधिकार समूहों का अनुमान है कि पिछले कुछ हफ्तों में 12000 से अधिक लोग मारे जा चुके हैं। इंटरनेट ब्लैकआउट के कारण सही आंकड़े शायद कभी सामने न आ पाएं। यह एक 'डिजिटल नरसंहार' है, जहां सच को दुनिया तक पहुंचने से पहले ही गला घोंट दिया जा रहा है। लेकिन इस बार कुछ अलग है। इस बार अमेरिका और पश्चिम केवल बयान नहीं दे रहे- वे एक अवसर देख रहे हैं। राष्ट्रपति ट्रम्प, जो हमेशा से 'अधिकतम दबाव' की नीति के पक्षधर रहे हैं, इस आग में अपना हाथ ताप रहे हैं। उन्होंने प्रदर्शनकारियों को मदद का वादा किया है, लेकिन किस तरह की मदद? क्या यह 1953 जैसी कोई 'कवर्ट मदद' होगी? या फिर सीरिया और लीबिया की तरह कोई सैन्य हस्तक्षेप?

पश्चिम का पाखंड यहां भी साफ दिखता है। एक तरफ वे ईरानी महिलाओं की आजादी के लिए आंसू बहाते हैं, दूसरी तरफ वे ऐसे प्रतिबंध लगाते हैं जिससे उसी आम ईरानी को दवाइयां और भोजन नहीं मिल पाता। 'वे परवाह नहीं करते कि तुम मरते हो या जीते हो,' एक ईरानी छात्र ने सोशल मीडिया पर लिखा था, इससे पहले कि उसका अकाउंट बंद हो जाता। उसने फिर लिखा- 'उनके लिए हम सिर्फ एक बारगेनिंग चिप (सौदेबाजी का सिक्का) हैं।'

क्षेत्रीय बिसात पर बिछी मौत की बाजी

ईरान का घर जल रहा है, और पड़ोसी मुल्क अपनी खिड़कियों से झांक रहे हैं—कुछ डर के साथ, तो कुछ दबी हुई खुशी के साथ। हर देश इस आग में अपने लिए कुछ न कुछ ढूंढ रहा है।

इजराइल: उम्मीद और खौफ का संगम

तेल अवीव में एक अजीब सी बेचैनी है। इजराइल के लिए, ईरान का वर्तमान शासन एक 'अस्तित्वगत खतरा' है। 'इज़राइल की मौत' के नारे, परमाणु कार्यक्रम और हिजबुल्लाह को दिए जाने वाले रॉकेट—दशकों से यही ईरान की पहचान रही है। इजराइली चाहते हैं कि यह शासन गिर जाए। वे शाह के बेटे, रजा पहलवी, की वापसी के सपने देख रहे हैं, जब दोनों देशों के बीच मधुर संबंध थे।

लेकिन इजराइल के रणनीतिकार अनुभव से जानते हैं कि मध्य पूर्व में सत्ता का शून्य अक्सर शैतानों से भर जाता है। उन्हें डर है कि अयातुल्ला के बाद कोई सैन्य तानाशाही या अराजकता न आ जाए, जो परमाणु हथियारों पर नियंत्रण खो दे। एक अस्थिर ईरान, जिसके पास बैलिस्टिक मिसाइलें हों, एक स्थिर दुश्मन से ज्यादा खतरनाक हो सकता है। इजराइल के लिए यह एक जुआ है—सिर मुड़ाते ही ओले पड़ने का डर।

तमाशाबीन बने खाड़ी देश

रियाद और अबू धाबी के शीशमहलों में एक दबी हुई मुस्कान है। हाल के वर्षों में उन्होंने ईरान के साथ संबंधों को सुधारने का नाटक किया था, दूतावास खोले थे, निवेश की बातें की थीं। लेकिन यह दोस्ती भरोसे पर नहीं, बल्कि मजबूरी पर टिकी थी।

आज, जब ईरान अंदर से टूट रहा है, तो खाड़ी के शेख राहत की सांस ले रहे हैं। 2023 के बाद से यमन के हुतियों ने सऊदी शहरों पर मिसाइलें दागना कम कर दिया था, लेकिन डर हमेशा बना था। अब, वे देख रहे हैं कि जिस शासन ने पूरे क्षेत्र में मिलिशिया और प्रॉक्सी वॉर

का जाल बिछाया था, वह अपनी ही जनता से हार रहा है। लेकिन वे चुप हैं। वे जानते हैं कि एक घायल शेर ज्यादा खतरनाक होता है। वे नहीं चाहते कि ईरान की आग उनकी सीमाओं तक पहुंचे। ओमान जैसे देश, जो हमेशा से अमेरिका और ईरान के बीच डाकिया रहे हैं, अब भी संवाद की उम्मीद लगाए बैठे हैं। लेकिन बाकी सब बस घड़ी देख रहे हैं—इंतजार कर रहे हैं उस पल का जब तेहरान का तख्त पलटेगा।

लेबनान: हिजबुल्लाह का अस्तित्वगत संकट

बेरूत की तंग गलियों में, हिजबुल्लाह के लड़ाकों के माथे पर पसीना है। ईरान की सड़कों पर लग रहे नारे—'न गाजा, न लेबनान, मेरी जान फिदा है ईरान पर'—उनके कानों में पिघले हुए शीशे की तरह उतर रहे हैं। ईरानी जनता अब अपने पैसे को हमास और हिजबुल्लाह पर लुटते हुए नहीं देखना चाहती।

हिजबुल्लाह के लिए यह केवल पैसे का सवाल नहीं है, यह वजूद का सवाल है। ईरान उनका 'आका' है, उनकी जीवनरेखा है। अगर तेहरान गिरता है, तो बेरूत में हिजबुल्लाह अनाथ हो जाएगा। लेबनान के लोग, जो पहले ही हिजबुल्लाह के हथियारों से तंग आ चुके हैं, ईरानी प्रदर्शनकारियों का हौसला बढ़ा रहे हैं। यह एक डोमिनो इफेक्ट है—तेहरान में एक ईंट गिरती है, तो बेरूत की इमारत हिलने लगती है।

तुर्की: मौकापरस्त पड़ोसी

अंकारा में राष्ट्रपति एर्दोगन अपनी मूंछों पर ताव दे रहे हैं। तुर्की और ईरान ऐतिहासिक प्रतिद्वंद्वी रहे हैं। सीरिया में, इराक में, हर जगह दोनों ने एक-दूसरे को चुनौती दी है। ईरान का कमजोर होना तुर्की के लिए एक सुनहरा अवसर है। सीरिया में पहले ही तुर्की समर्थित सुन्नी ताकतों ने बशर अल-असद के गिरने के बाद बढ़त बना ली है। अब अगर ईरान अस्थिर होता है, तो तुर्की खुद को क्षेत्र का एकमात्र 'बिग ब्रदर' घोषित कर सकता है। लेकिन एर्दोगन भी एक तलवार की धार पर चल रहे हैं। अगर ईरान में गृहयुद्ध छिड़ा, तो लाखों शरणार्थी तुर्की की ओर भागेंगे। कुर्द विद्रोह फिर से भड़क सकता है। इसलिए तुर्की का आधिकारिक बयान बहुत नपा-तुला है—'बाहरी लोग दूर रहें।' वे चाहते हैं कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।

एक अधूरी दास्तां व भविष्य का सवाल

वापस तेहरान की उसी सड़क पर चलते हैं, जहां से हमने शुरुआत की थी।

धुएं के गुबार के बीच, वह युवा लड़की अब भी वहां खड़ी है। उसके हाथ में पत्थर है, और सामने बख्तरबंद गाड़ी। उसे नहीं पता कि मोसद्देक कौन थे। उसे शायद 1953 की तारीख भी याद नहीं होगी। उसे नहीं पता कि उसका विद्रोह वाशिंगटन में तेल की कीमतों को कैसे प्रभावित कर रहा है, या इजराइल की सुरक्षा कैबिनेट इस पर क्या चर्चा कर रही है। वह बस इतना जानती है कि वह सांस लेना चाहती है। वह आजाद होना चाहती है—हिजाब की जबरदस्ती से, मुल्लाओं की नैतिकता पुलिस से, और उस गरीबी से जिसने उसके पिता की कमर तोड़ दी है।

लेकिन त्रासदी यह है कि उसकी आजादी की कीमत कोई और तय कर रहा है। उसकी चीखें 'सौदा' बन गई हैं। अगर कल को ईरान में सत्ता बदलती है, और कोई पश्चिम-परस्त नेता गद्दी पर बैठता है, तो क्या उसे वाकई आजादी मिलेगी? या फिर उसे 1953 की तरह एक और 'सभ्य तानाशाही' मिलेगी, जो तेल तो पश्चिम को बेचेगी लेकिन अपनी जनता को कुचलना जारी रखेगी? मैडेलीन अलब्राइट ने वर्ष 2000 में एक दुर्लभ क्षण में स्वीकार किया था कि 1953 का तख्तापलट 'ईरान के राजनीतिक विकास के लिए एक झटका था।' आज, 2026 में, दुनिया एक और 'झटके' की तैयारी कर रही है।

ईरान की कहानी हमें सिखाती है कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति में 'नैतिकता' एक छलावा है। यहां सिर्फ हित होते हैं। 1953 में मुद्दा कम्युनिज़्म नहीं था, तेल था। 2026 में मुद्दा लोकतंत्र नहीं है, फिर से तेल और भू-राजनीतिक प्रभुत्व है। इस सब के बीच, ईरान की जनता—वो शायरों, कलाकारों और दार्शनिकों की कौम—पिस रही है। वे इतिहास के पहिये के नीचे कुचले जा रहे हैं। लेकिन उम्मीद... उम्मीद वह जिद्दी बीज है जो रेगिस्तान में भी पनप जाता है। शायद इस बार, ईरान की जनता वह कहानी लिखेगी जो किसी विदेशी दूतावास में नहीं, बल्कि तेहरान की सड़कों पर तय होगी। शायद इस बार, वे तेल के लिए नहीं, बल्कि अपनी रूह के लिए जीतेंगे।

जब तक वह सुबह नहीं आती, तेहरान जलता रहेगा। और दुनिया, अपनी सुविधानुसार, कभी तालियां बजाएगी तो कभी आंखें फेर लेगी। क्योंकि अंततः, जैसा कि उस गुमनाम ईरानी प्रदर्शनकारी ने कहा था—'उन्हें परवाह नहीं कि तुम मरते हो, जब तक कि उनका तेल बहता रहे।'

यह सिर्फ ईरान की कहानी नहीं है। यह सत्ता, लालच और मानव मुक्ति के बीच के शाश्वत संघर्ष की एक और खूनी किस्त है। ●

सीमा पर साजिश

चीन-पाक धुरी में फंसता बांग्लादेश

अनवर हुसैन

पड़ोसी की आग अब चेतावनी नहीं रही, वह रणनीतिक हमला बन चुकी है। भारत के रक्त से जन्मा बांग्लादेश आज चीन-पाक धुरी की शरण में जाकर उसी भारत की सुरक्षा पर सीधा प्रहार कर रहा है—यह संतुलन नहीं, खुला विश्वासघात है।

हमने देखा-सुना है कि जब-जब पड़ोसी के घर में आग लगती है, उसकी तपिश हमारी दीवारों तक जरूर पहुंचती है। लेकिन जब पड़ोसी खुद ही अपने घर को बारूद के ढेर में तब्दील करने पर आमादा हो जाए, तो सतर्कता ही एकमात्र बचाव नहीं, बल्कि आक्रामकता ही एकमात्र विकल्प बचती है। बांग्लादेश, जिसे 1971 में भारतीय रक्त ने सींचकर एक स्वतंत्र राष्ट्र का अस्तित्व दिया था, आज उसी भारत की सुरक्षा के लिए एक नासूर बनता जा रहा है। ढाका की सत्ता के गलियारों में जो खेल खेला जा रहा है, वह अब केवल कूटनीतिक 'संतुलन' का मामला नहीं रहा; यह एक सुनियोजित और खतरनाक 'रणनीतिक विश्वासघात' है।

मुहम्मद यूनुस, जिन्हें पश्चिम ने कभी 'गरीबों का मसीहा' और 'शांति का दूत' बताकर नोबेल पुरस्कार से नवाजा था, आज अपनी सत्ता को बचाने और भारत-विरोधी एजेंडे को हवा देने के लिए बांग्लादेश को चीन और पाकिस्तान की गोद में लगभग बिठा चुके हैं। यह केवल एक दिशाहीन नेतृत्व की कहानी नहीं है, बल्कि यह दक्षिण एशिया के भू-राजनीतिक मानचित्र पर एक नई और जहरीली लकीर खींचने की साजिश है, जहां वाशिंगटन की चेतावनी को अनसुना कर ढाका अब बीजिंग के 'कर्ज-जाल' और रावलपिंडी के 'जिहादी-सैन्य गठजोड़' में फंसता जा रहा है।

चीन-पाक धुरी: ढाका का नया 'किबला'

बांग्लादेश में अमेरिकी राजदूत ब्रेंट क्रिस्टेंसन की हालिया चेतावनी को हल्के में नहीं लिया जा सकता। जब एक महाशक्ति का राजदूत सार्वजनिक रूप से यह कहे कि चीनी सैन्य उपकरणों की खरीद किसी देश की संप्रभुता के लिए दीर्घकालिक खतरा है, तो इसे केवल कूटनीतिक बयान नहीं, बल्कि

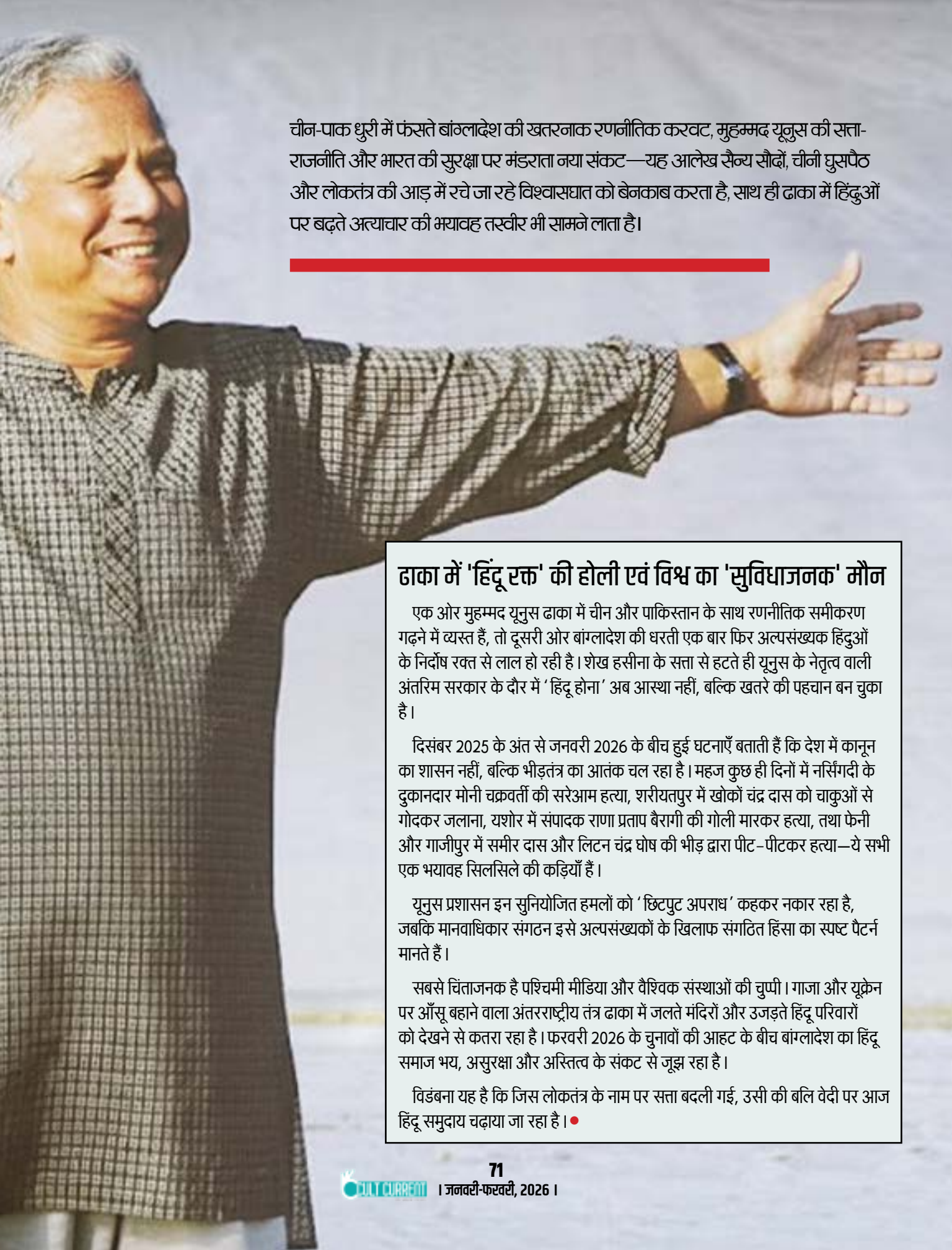

चीन-पाक धुरी में फंसते बांग्लादेश की खतरनाक रणनीतिक करवट, मुहम्मद यूनुस की सत्ता-राजनीति और भारत की सुरक्षा पर मंडराता नया संकट—यह आलेख सैन्य सौदों, चीनी घुसपैठ और लोकतंत्र की आड़ में रचे जा रहे विश्वासघात को बेनकाब करता है, साथ ही ढाका में हिंदुओं पर बढ़ते अत्याचार की भयावह तस्वीर भी सामने लाता है।

ढाका में 'हिंदू रक्त' की होली एवं विश्व का 'सुविधाजनक' मौन

एक ओर मुहम्मद यूनुस ढाका में चीन और पाकिस्तान के साथ रणनीतिक समीकरण गढ़ने में व्यस्त हैं, तो दूसरी ओर बांग्लादेश की धरती एक बार फिर अल्पसंख्यक हिंदुओं के निर्दोष रक्त से लाल हो रही है। शेख हसीना के सत्ता से हटते ही यूनुस के नेतृत्व वाली अंतरिम सरकार के दौर में 'हिंदू होना' अब आस्था नहीं, बल्कि खतरे की पहचान बन चुका है।

दिसंबर 2025 के अंत से जनवरी 2026 के बीच हुई घटनाएँ बताती हैं कि देश में कानून का शासन नहीं, बल्कि भीड़तंत्र का आतंक चल रहा है। महज कुछ ही दिनों में नर्सिंगदी के दुकानदार मोनी चक्रवर्ती की सरेआम हत्या, शरीयतपुर में खोकों चंद्र दास को चाकुओं से गोदकर जलाना, यशोर में संपादक राणा प्रताप बैरागी की गोली मारकर हत्या, तथा फेनी और गाजीपुर में समीर दास और लिटन चंद्र घोष की भीड़ द्वारा पीट-पीटकर हत्या—ये सभी एक भयावह सिलसिले की कड़ियाँ हैं।

यूनुस प्रशासन इन सुनियोजित हमलों को 'छिटपुट अपराध' कहकर नकार रहा है, जबकि मानवाधिकार संगठन इसे अल्पसंख्यकों के खिलाफ संगठित हिंसा का स्पष्ट पैटर्न मानते हैं।

सबसे चिंताजनक है पश्चिमी मीडिया और वैश्विक संस्थाओं की चुप्पी। गाजा और यूक्रेन पर आँसू बहाने वाला अंतरराष्ट्रीय तंत्र ढाका में जलते मंदिरों और उजड़ते हिंदू परिवारों को देखने से कतरा रहा है। फरवरी 2026 के चुनावों की आहट के बीच बांग्लादेश का हिंदू समाज भय, असुरक्षा और अस्तित्व के संकट से जूझ रहा है।

विडंबना यह है कि जिस लोकतंत्र के नाम पर सत्ता बदली गई, उसी की बलि वेदी पर आज हिंदू समुदाय चढ़ाया जा रहा है।

खतरे की घंटी माना जाना चाहिए। लेकिन यूनुस प्रशासन के कानों पर जूं तक नहीं रेंग रही। इसके विपरीत, ढाका ने अपनी वफादारी का रुख स्पष्ट कर दिया है—और वह रुख नई दिल्ली या वाशिंगटन की ओर नहीं, बल्कि बीजिंग और इस्लामाबाद की ओर है।

यूनुस के नेतृत्व में बांग्लादेश अब उस 'चीन-पाक धुरी' का तीसरा पहिया बनने को आतुर है, जिसका एकमात्र उद्देश्य भारत को घेरना है। जिस पाकिस्तान ने 1971 में 30 लाख बंगालियों का नरसंहार किया, आज उसी पाकिस्तान के साथ यूनुस प्रशासन रक्षा सौदे कर रहा है। यह न केवल बांग्लादेश के इतिहास के साथ गद्दारी है, बल्कि भारत के लिए एक गंभीर सुरक्षा चुनौती भी है।

सैन्य आधुनिकता के नाम पर 'सामरिक दासता'

ढाका की हालिया गतिविधियां किसी स्वतंत्र राष्ट्र के रक्षा आधुनिकरण जैसी नहीं, बल्कि एक 'क्लाइंट स्टेट' बनने की तैयारी जैसी लग रही हैं। बांग्लादेश वायु सेना के लिए चीन से चौथी पीढ़ी के J-10C फाइटर जेट्स और पाकिस्तान से JF-17 थंडर (जो असल में चीनी तकनीक का ही पाकिस्तानी संस्करण है) खरीदने की बातचीत अंतिम चरण में है।

यहां यह समझना आवश्यक है कि रक्षा सौदे कभी भी 'वन-टाइम ट्रांजैक्शन' नहीं होते। जब आप किसी देश से लड़ाकू विमान खरीदते हैं, तो आप केवल मशीन नहीं खरीदते; आप अगले 30-40 वर्षों के लिए उस देश की 'सामरिक दासता' स्वीकार करते हैं। स्पेयर पार्ट्स, सॉफ्टवेयर अपग्रेड, मेंटेनेंस और पायलट ट्रेनिंग—हर चीज के लिए ढाका को अब बीजिंग और रावलपिंडी के सामने हाथ फैलाना होगा।

सोचिए, जिस बांग्लादेश की वायु सेना को भारत ने अपने पैरों पर खड़ा किया, उसके हवाई अड्डों पर अब चीनी इंजीनियर और पाकिस्तानी वायु सेना के प्रशिक्षक डेरा जमाएंगे। बांग्लादेश के प्रिंसिपल स्टाफ ऑफिसर लेफ्टिनेंट जनरल एस.एम. कामरुल हसन की चीनी और पाकिस्तानी समकक्षों के साथ लगातार बैठकें यह संकेत दे रही हैं कि ढाका अब अपनी सुरक्षा की चाबी भारत के दुश्मनों को सौंपने जा रहा है। पाकिस्तान द्वारा 'सुपर मुश्शक' ट्रेनर विमानों की फास्ट-ट्रैक डिलीवरी का वादा और चीन के साथ गुप्त समझौते यह बताते हैं कि यूनुस भारत की सीमाओं पर एक शत्रुतापूर्ण सैन्य पारिस्थितिकी तंत्र तैयार कर रहे हैं।

भारत के लिए 'लक्ष्मण रेखा'

सैन्य खरीद से भी ज्यादा चिंताजनक विषय है चीन की ढाका में ढांचागत घुसपैठ। यूनुस प्रशासन की प्रमुख सलाहकार सैयदा रिजवाना हसन का यह बयान कि 'चीन तीस्ता नदी मास्टर प्लान पर जल्द से जल्द काम शुरू करने को उत्सुक है,' भारत के लिए खतरे की सबसे बड़ी घंटी है।

रंगपुर का वह इलाका, जहां चीन इस प्रोजेक्ट को अंजाम देना चाहता है, भारत के 'चिकन नेक' (सिलीगुड़ी कॉरिडोर) के बेहद करीब है। सिलीगुड़ी कॉरिडोर भारत की वह पतली गर्दन है जो पूर्वोत्तर भारत को शेष देश से जोड़ती है। अगर चीन को तीस्ता परियोजना के बहाने वहां अपने सर्विलांस रडार, इंजीनियर और उपकरण तैनात करने का मौका मिल गया, तो यह भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक अस्तित्वगत खतरा होगा।

यह परियोजना विकास के नाम पर एक रणनीतिक अतिक्रमण है। दक्षिण में पेकुआ में चीनी पनडुब्बी बेस का निर्माण और अब उत्तर में तीस्ता प्रोजेक्ट—यह स्पष्ट है कि चीन बांग्लादेश की जमीन का इस्तेमाल भारत को 'दो मोर्चे' पर घेरने के लिए कर रहा है। और यूनुस? वे अपनी सत्ता बचाने के लिए भारत की सुरक्षा को गिरवी रखने में जरा भी संकोच नहीं कर रहे।

ट्रम्प-विरोधी यूनुस और अमेरिका की लाचारी

इस पूरे समीकरण में एक दिलचस्प और खतरनाक पहलू मुहम्मद यूनुस की राजनीतिक विचारधारा है। यूनुस को अमेरिका में डेमोक्रेट्स और क्लिंटन परिवार का करीबी माना जाता है। वे डोनाल्ड ट्रम्प के कट्टर विरोधी रहे हैं। अब जब वाशिंगटन में ट्रम्प प्रशासन सत्ता में है या प्रभाव में है, तो यूनुस को पता है कि अमेरिका उन पर दबाव

डालेगा। इसीलिए, अमेरिकी दबाव को संतुलित करने के लिए यूनुस चीन की गोद में जा बैठे हैं। जब अमेरिकी राजदूत ने चेतावनी दी, तो ढाका स्थित चीनी दूतावास ने जिस आक्रामकता के साथ पलटवार किया, वह अभूतपूर्व था। चीनी प्रवक्ता ने अमेरिकी राजदूत की टिप्पणियों को 'गैर-जिम्मेदाराना' और 'दुर्भावनापूर्ण' बताया। कूटनीतिक भाषा में इसे सीधी ललकार कहते हैं।

चीन अब ढाका में केवल एक निवेशक नहीं, बल्कि एक 'संरक्षक' की भूमिका में आ गया है। वह यूनुस को यह भरोसा दिला रहा है कि अगर अमेरिका लोकतंत्र या मानवाधिकारों के नाम पर दबाव डालेगा, तो बीजिंग और उसका प्यादा पाकिस्तान उनके साथ खड़ा रहेगा। यूनुस का यह ट्रम्प-विरोधी रुख भारत के लिए समस्या है, क्योंकि इससे वे अमेरिका-भारत साझेदारी के खिलाफ चीन-पाक धुरी को मजबूत कर रहे हैं।

1971 की भूल और पाकिस्तान की वापसी

सबसे बड़ा व्यंग्य यह है कि जिस 'मुक्ति संग्राम' की बुनियाद पर बांग्लादेश खड़ा है, यूनुस उस बुनियाद को ही खोद रहे हैं। पाकिस्तान के साथ ' JF-17 थंडर' और 'सुपर मुश्शक' विमानों की डील केवल व्यापार नहीं है। यह इस्लामाबाद की उस रणनीति की जीत है, जिसके तहत वह बिना गोली चलाए बांग्लादेश को फिर से अपने प्रभाव क्षेत्र में लाना चाहता था।

पाकिस्तानी वायु सेना प्रमुख जहीर अहमद बाबर सिद्धू और बांग्लादेशी वायु सेना प्रमुख हसन महमूद खान के बीच 'रक्षा सहयोग के विस्तार' पर चर्चा इस बात का प्रमाण है कि यूनुस 1971 के घावों को भूलकर अपने 'पुराने आकाओं' के साथ नए रिश्ते बना रहे हैं। यह भारत के लिए असहनीय होना चाहिए। एक तरफ हम 'नेबरहुड फर्स्ट' (पड़ोसी पहले) की नीति अपनाते हैं, और दूसरी तरफ हमारा पड़ोसी हमारे ही जानी दुश्मनों को अपने घर में पनाह दे रहा है।

आगामी चुनाव और यूनुस का 'पावर ग्रैब'

बांग्लादेश में 12 फरवरी को प्रस्तावित जनमत संग्रह और आम चुनाव केवल एक दिखावा मात्र रह गए हैं। आलोचकों का मानना है कि यह पूरी प्रक्रिया यूनुस की सत्ता को 'वैधता' प्रदान करने का एक नाटक है। चीन और पाकिस्तान इस प्रक्रिया में यूनुस का साथ दे रहे हैं ताकि ढाका में एक ऐसी सरकार रहे जो हमेशा के लिए बीजिंग की ऋणी रहे।

अगर यूनुस अपनी सत्ता को मजबूत करने में सफल हो जाते हैं, तो भारत के पूर्व में एक और 'पाकिस्तान' का जन्म हो सकता है—एक ऐसा देश जो नाम से संप्रभु होगा, लेकिन जिसका रिमोट कंट्रोल बीजिंग और रावलपिंडी में होगा।

भारत के लिए 'रणनीतिक सब्र' का समय समाप्त

अब समय आ गया है कि भारत अपनी 'मीठी कूटनीति' को त्यागकर यथार्थवादी और आक्रामक रुख अपनाए। बांग्लादेश अब वह 'मित्र राष्ट्र' नहीं रहा जिसकी कल्पना शेख हसीना के दौर में की जाती थी। मुहम्मद यूनुस के नेतृत्व में बांग्लादेश भारत-प्रशांत क्षेत्र के संतुलन को बिगाड़ रहा है।

भारत को स्पष्ट संदेश देना होगा कि सिलीगुड़ी कॉरिडोर के पास चीनी उपस्थिति किसी भी कीमत पर स्वीकार्य नहीं होगी। अगर ढाका J-10C और JF-17 खरीदकर पाकिस्तान-चीन धुरी का हिस्सा बनता है, तो भारत को भी अपनी आर्थिक और कूटनीतिक ताकत का इस्तेमाल कर बांग्लादेश को यह एहसास दिलाना होगा कि भारत के सहयोग के बिना उसका अस्तित्व संकट में पड़ सकता है।

यूनुस यह भूल रहे हैं कि चीन का कर्ज और पाकिस्तान की दोस्ती—दोनों ही 'विषकन्या' के आलिंगन की तरह हैं। शुरू में यह सुखद लग सकता है, लेकिन अंत निश्चित रूप से विनाशकारी होता है। प्रश्न यह है कि क्या भारत इस विनाश का मूकदर्शक बना रहेगा, या फिर चाणक्य की नीति अपनाकर इस विषैले गठजोड़ को उसकी जड़ों से काट फेंकेगा? क्योंकि अब खतरा दरवाजे पर नहीं, घर के आंगन में आ चुका है। ●

एआई, परमाणु जोखिम और अमेरिकी आक्रामकता

डिजिटल कुरुक्षेत्र में भारत

संजय श्रीवास्तव

परमाणु निरोध की पुरानी स्थिरता अब एल्गोरिदम की रफ्तार से टूट रही है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ट्रम्प युग की अमेरिकी आक्रामकता और महाशक्तियों की होड़ ने युद्ध को अदृश्य बना दिया है—जहाँ भारत के सामने संयम और शक्ति के संतुलन की सबसे कठिन परीक्षा है।

युद्ध और तकनीक का संबंध सभ्यता जितना ही पुराना है, लेकिन इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में यह रिश्ता एक खतरनाक मोड़ पर आ चुका है। कभी तलवारों से लड़े जाने वाले युद्ध बारूद तक पहुँचे, फिर परमाणु हथियारों ने भय का संतुलन रचा। शीत युद्ध के दौर में रणनीतिक स्थिरता 'आपसी विनाश की गारंटी' पर टिकी थी। कोई भी पक्ष पहले हमला इसलिए नहीं करता था क्योंकि जवाब में पूर्ण विनाश तय था। पर आज यह संतुलन एक अदृश्य शक्ति से डगमगा रहा है—कृत्रिम बुद्धिमत्ता यानी एआई।।

दुनिया अब त्रिध्रुवीय हथियारों की दौड़ में उलझ चुकी है, जहाँ अमेरिका, चीन और रूस अपनी परमाणु कमान प्रणालियों को मशीनों के हवाले कर रहे हैं। युद्ध अब केवल सीमाओं पर नहीं, बल्कि डेटा सर्वरों और एल्गोरिदम के बादलों में लड़ा जा रहा है। इसी उथल-पुथल के बीच डोनाल्ड ट्रम्प की सत्ता में वापसी ने भू-राजनीति में नई आग भड़का दी है। 'अमेरिका फर्स्ट' अब सिर्फ आर्थिक नारा नहीं, बल्कि आक्रामक सैन्य सिद्धांत बन चुका है। भारत जैसे देशों के लिए यह दौर चुनौती भी है और चेतावनी भी।

रणनीतिक स्थिरता का टूटता ढांचा

शीत युद्ध की स्थिरता दो स्तंभों पर खड़ी थी—पहला, किसी को पहले हमला करने का लाभ न होना; दूसरा, हथियारों की दौड़ पर नियंत्रण। लेकिन समय के साथ इन अवधारणाओं की अलग-अलग व्याख्याएँ भ्रम का कारण बनीं। अब जब परमाणु युद्ध की छाया पारंपरिक संघर्षों पर भी मंडराने लगी है और महाशक्तियों के बीच हथियार नियंत्रण पर सहमति लगभग खत्म हो चुकी है, एआई ने इस संकट को और गहरा कर दिया है।

एआई-संचालित प्रणालियाँ निर्णय की गति को मानवीय क्षमता से कहीं आगे ले जाती हैं। कल्पना कीजिए हाइपरसोनिक मिसाइलों की, जो ध्वनि से कई गुना तेज चलती हैं और रास्ता बदल सकती हैं। ऐसे हथियार दुश्मन को सोचने तक का समय नहीं देंगे। नतीजा—देश पहले वार के लिए मजबूर हो सकते हैं। यही 'प्रथम प्रवर्तक लाभ' रणनीतिक स्थिरता का सबसे बड़ा दुश्मन है। अमेरिका एआई से अपनी काउंटरफोर्स रणनीति को और घातक बना रहा है, जबकि चीन और रूस इस असंतुलन को पाटने में जुटे हैं। इससे सुरक्षा दुविधा पैदा होती है—जहाँ एक की सुरक्षा दूसरे की असुरक्षा बन जाती है।

एआई: सुरक्षा कवच या विनाश का ट्रिगर?

कुछ विशेषज्ञ मानते हैं कि एआई युद्ध को अधिक नियंत्रित बना सकती है—बेहतर निगरानी, तेज संचार और सटीक खुफिया जानकारी से गलतफहमियाँ कम होंगी। लेकिन यही तकनीक सबसे बड़ा खतरा भी है। एआई डेटा पर निर्भर करती है, और डेटा से छेड़छाड़ संभव है।

अगर किसी साइबर हमले के जरिए एआई सिस्टम को यह यकीन दिला दिया जाए कि दुश्मन ने परमाणु हमला कर दिया है, तो मशीन बिना भावनात्मक विवेक के जवाबी हमला शुरू कर सकती है। इसे 'सत्यनिष्ठा हमला' कहा जाता है। इसके अलावा एल्गोरिदम में छिपे पूर्वाग्रह किसी सामान्य सैन्य अभ्यास को भी आक्रामक हमला मान सकते हैं।

गैर-परमाणु हथियार—जैसे साइबर हमले या इलेक्ट्रोमैग्नेटिक पल्स—जो बिना विस्फोट के दुश्मन की परमाणु संरचना को ठप कर सकते हैं, परमाणु और पारंपरिक युद्ध की रेखा को और धुंधला कर रहे हैं। संकट की घड़ी में गलती की गुंजाइश कई गुना बढ़ चुकी है।

ट्रम्प 2.0: शक्ति का खुला प्रदर्शन

तकनीकी उथल-पुथल के साथ राजनीतिक नेतृत्व भी अधिक आक्रामक हो चुका है। सत्ता में लौटने के बाद ट्रम्प ने संयम छोड़कर शक्ति-प्रदर्शन की नीति अपनाई है। वेनेजुएला में राष्ट्रपति मादुरो का अपहरण, ईरान के परमाणु ठिकानों पर बमबारी, पश्चिम एशिया और अफ्रीका में सैन्य अभियानों का विस्तार—यह सब दर्शाता है कि अमेरिका अब संप्रभुता की सीमाओं को अपनी सुविधा से परिभाषित कर रहा है।

कराकस से मादुरो को उठाकर ले जाना आधुनिक इतिहास की असाधारण घटना थी। यह मोनरो सिद्धांत की आक्रामक वापसी जैसा था—जहाँ अमेरिका पूरे लैटिन अमेरिका को अपना प्रभाव क्षेत्र मानता है। ईरान पर हमलों ने भले उसके परमाणु कार्यक्रम को पीछे धकेला हो, लेकिन पूरे क्षेत्र को अस्थिरता की आग में झोंक दिया।

यमन, सीरिया, सोमालिया और नाइजीरिया में अमेरिकी कार्रवाई यह संकेत है कि वाशिंगटन अब दुश्मनों को दुनिया के किसी भी कोने में निशाना बनाने से नहीं हिचकेगा।

भारत के सामने खड़ी रणनीतिक पहेली

इस बदलती दुनिया में भारत का स्थान बेहद संवेदनशील है। एक जिम्मेदार परमाणु शक्ति होने के नाते भारत इस तकनीकी दौड़ से अलग नहीं रह सकता।

पहली चुनौती है—एआई को अपनी सुरक्षा संरचना में शामिल करना, लेकिन मानवीय नियंत्रण बनाए रखते हुए। चीन की एआई-सक्षम मिसाइलें और ड्रोन भारत के लिए प्रत्यक्ष खतरा हैं। भारत को अपनी चेतावनी प्रणालियों को आधुनिक बनाना होगा, पर निर्णय का अंतिम अधिकार मनुष्य के पास ही रहना चाहिए।

दूसरी चुनौती अमेरिकी आक्रामकता और रणनीतिक स्वायत्तता के बीच संतुलन है। अमेरिका के ईरान जैसे देशों पर हमले भारत की ऊर्जा सुरक्षा और क्षेत्रीय हितों को प्रभावित करते हैं। चाबहार जैसे परियोजनाएँ दांव पर लग सकती हैं। भारत को अमेरिका के साथ साझेदारी रखते हुए भी अपनी स्वतंत्र नीति बचानी होगी।

तीसरा खतरा साइबर युद्ध से है—खासकर पाकिस्तान जैसे अस्थिर पड़ोसी से, जो चीन की मदद से एआई-आधारित हमले कर सकता है। भारत को अपनी साइबर और अंतरिक्ष सुरक्षा को अभेद्य बनाना होगा। चौथा और अहम पहलू है—ग्लोबल साउथ का नेतृत्व। युद्धों का सबसे ज्यादा असर विकासशील देशों पर पड़ता है। तेल महंगा होता है, आपूर्ति श्रृंखलाएँ टूटती हैं। भारत को अंतरराष्ट्रीय मंचों पर एआई के सैन्य उपयोग पर नियम बनाने की पहल करनी होगी।

भविष्य का धुंधलका और भारत की भूमिका

हम एक नए परमाणु युग में प्रवेश कर चुके हैं—जहाँ यूरेनियम के साथ सिलिकॉन भी हथियार बन चुका है। शीत युद्ध की स्थिरता अब इतिहास है। जबकि ट्रम्प का अमेरिका इस अस्थिरता को और तेज कर रहा है। ●

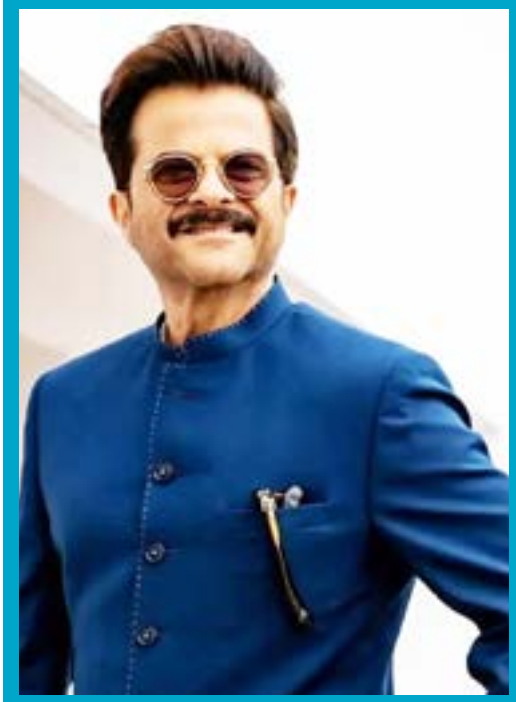

'नायक' की वापसी! अनिल कपूर फिर बनेंगे जनता की आवाज़?

बॉलीवुड गलियारों में इन दिनों अनिल कपूर की सुपरहिट फिल्म नायक के सीक्वल को लेकर जबरदस्त हलचल है। गॉसिप से लेकर एंटरटेनमेंट पोर्टल्स तक खबरें उड़ रही हैं कि मेकर्स ने इस आइकोनिक फिल्म के दूसरे पार्ट पर काम शुरू कर दिया है। जैसे ही यह चर्चा सामने आई, फैंस की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। सोशल मीडिया पर लोग एक बार फिर अनिल कपूर को दमदार अंदाज़ में देखने की उम्मीद जता रहे हैं। हालांकि अभी आधिकारिक घोषणा नहीं हुई है, लेकिन माना जा रहा है कि नायक 2 जल्द ही बड़े पर्दे पर धमाल मचा सकता है।•

सारा अली खान–शुभमन गिल की 'सीक्रेट डेट'

बॉलीवुड की बिंदास बेबो गर्ल सारा अली खान एक बार फिर सुर्खियों में हैं, लेकिन इस बार वजह कोई फिल्म नहीं, बल्कि क्रिकेट स्टार शुभमन गिल के साथ उनकी कथित डेटिंग है। सोशल मीडिया पर वायरल हो रही तस्वीरों और वीडियो ने फैंस के बीच हलचल मचा दी है। बताया जा रहा है कि दोनों को हाल ही में एक लग्जरी कैफे में साथ वक्त बिताते देखा गया, जहां उनकी मुस्कान और बॉडी लैंग्वेज ने गॉसिप को और हवा दे दी।

जैसे ही ये क्लिप्स सामने आई, ट्विटर से लेकर इंस्टाग्राम तक #SaraAliKhan और #ShubmanGill ट्रेंड करने लगे। कुछ फैंस इसे नई बॉलीवुड-क्रिकेट जोड़ी बता रहे हैं, तो कुछ इसे सिर्फ इत्तेफाक मान रहे हैं।

हालांकि सारा और शुभमन दोनों ने अभी तक इस खबर पर चुप्पी साध रखी है, लेकिन उनकी यह 'मौन मुस्कान' गॉसिप को और मसालेदार बना रही है। सच क्या है, यह तो वक्त बताएगा, मगर फिलहाल अफवाहों का बाजार गर्म है!•

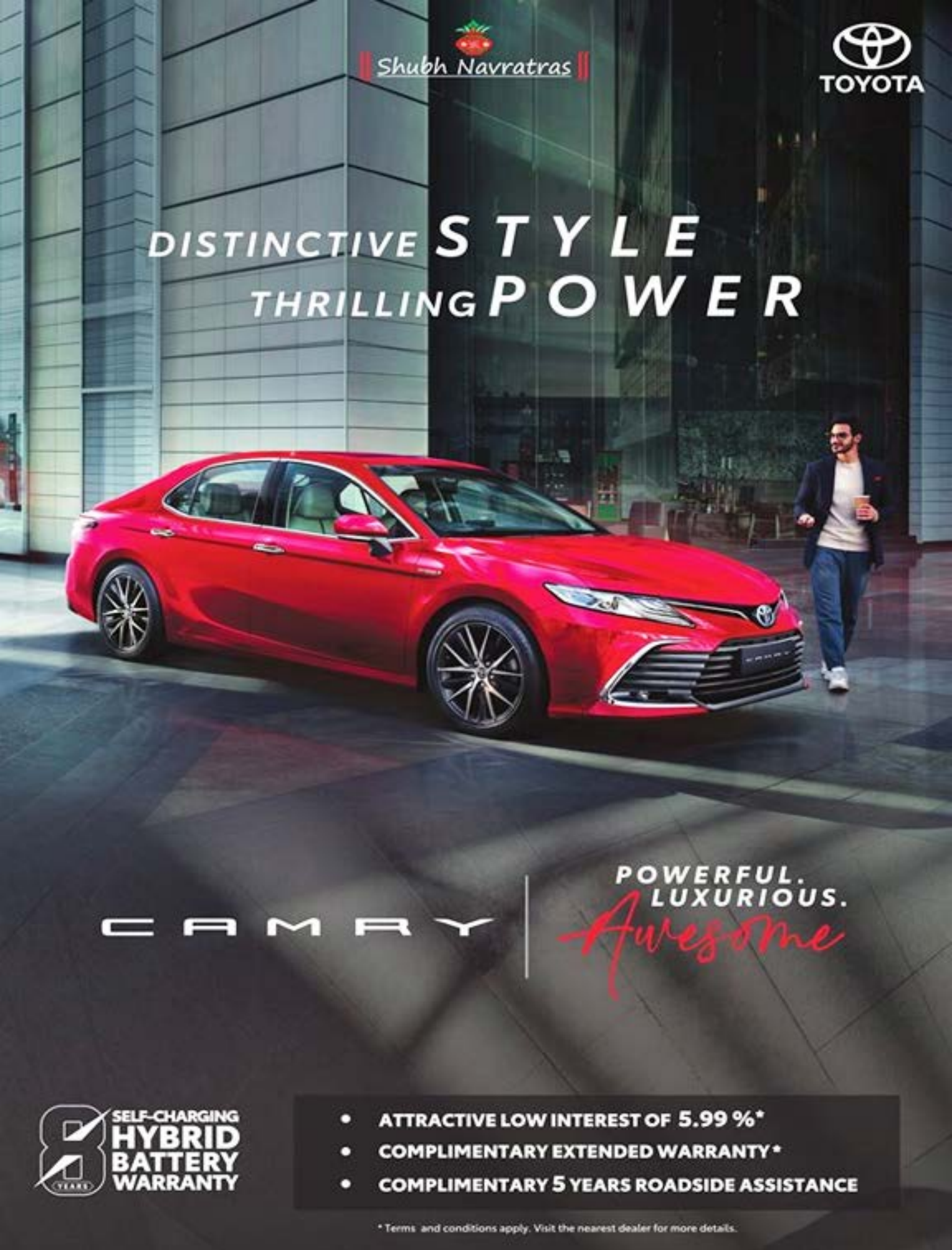

Shubh Navratras
TOYOTA
DISTINCTIVE STYLE
THRILLING POWER
CAMRY
POWERFUL.
LUXURIOUS.
Awesome
SELF-CHARGING HYBRID BATTERY WARRANTY
8 YEARS
• ATTRACTIVE LOW INTEREST OF 5.99 %*
• COMPLIMENTARY EXTENDED WARRANTY*
• COMPLIMENTARY 5 YEARS ROADSIDE ASSISTANCE
* Terms and conditions apply. Visit the nearest dealer for more details.

RNI TITLE CODE : DELENG19447

Experience it. Look at it from all angles. Check out the contours, the craftsmanship, the perfection of form and the waterfall...

Glamour ▪ Convenience ▪ Technology

MARC®
Bathing Luxury

MARC SANITATION PVT. LTD.

A-2, S.M.A. Co-op. Industrial Estate, G.T. Kamal Road, Delhi-110 033
Ph: 27691410, Fax: 011-27691445/27692295 E-mail: info@marcindia.com Website : www.marcindia.com